

# श्रमणा



अप्रैल - जून १९६६  
वर्ष ४७ ] [ अंक ४-६

पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वाराणसी



# श्रमण

पार्श्वनाथ विद्यापीठ की त्रैमासिक शोध-पत्रिका

अंक ४-६ ]

[ अप्रैल-जून, १९९६

प्रधान सम्पादक  
प्रोफेसर सागरमल जैन

सम्पादक मण्डल  
डॉ० अशोक कुमार सिंह  
डॉ० शिवप्रसाद  
डॉ० श्रीप्रकाश पाण्डेय

प्रकाशनार्थ लेख-सामग्री, समाचार, विज्ञापन एवं सदस्यता आदि के लिए सम्पर्क करें

प्रधान सम्पादक  
श्रमण

पार्श्वनाथ विद्यापीठ

आई० टी० आई० मार्ग, करौंदी  
पो० ऑ० — बी० एच० यू०  
वाराणसी — २२१ ००५  
दूरभाष : ३११४६२  
फैक्स : ०५४२ — ३११४६२

वार्षिक सदस्यता शुल्क

संस्थाओं के लिए : रु० ६०.००  
व्यक्तियों के लिए : रु० ५०.००  
एक प्रति : रु० १५.००

आजीवन सदस्यता शुल्क

संस्थाओं के लिए : रु० १०००.००  
व्यक्तियों के लिए : रु० ५००.००

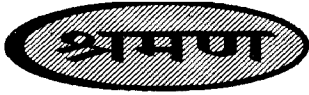
यह आवश्यक नहीं कि लेखक के विचारों से सम्पादक सहमत हों।

# श्रमण

## हिन्दी खण्ड

### प्रस्तुत अङ्क में

- |  | पृष्ठ   |
|--|---------|
| १. पाणिनीय व्याकरण का सरलीकरण और<br>आचार्य हेमचन्द्र<br>श्यामधर शुक्ल      | ३ - १०  |
| २. वसुदेवहिंडी का समीक्षात्मक अध्ययन<br>डॉ० कमल जैन                        | ११ - ३५ |
| ३. हर्षपुरीयगच्छ अपरनाम मलधारीगच्छ का<br>संक्षिप्त इतिहास<br>डॉ० शिवप्रसाद | ३६ - ६७ |



## पाणिनीय व्याकरण का सरलीकरण और आचार्य हेमचन्द्र

श्यामधर शुक्ल<sup>३</sup>

संस्कृत व्याकरणशास्त्र का इतिहास प्राचीन काल से लेकर अद्यावधि महा-वैयाकरण पाणिनि की प्रौढ़ कृति 'अष्टाध्यायी' से अभिभूत रहा है। लौकिक संस्कृत के प्रारम्भिक काल से ही पाणिनीय व्याकरण-धारा का अजस्र प्रवाह निर्बाध गति से प्रवहमान है। संस्कृत व्याकरणशास्त्र की यह प्रथम ज्ञात कृति चिर-प्राचीन होकर भी चिर-नवीन है। पाणिनि ने अपनी अष्टाध्यायी में अपने पूर्वकालिक वैयाकरणों<sup>१</sup> शाकल्य, स्फोटायन एवं भागुरि आदि का सादर-नामोल्लेख तो किया है किन्तु उनकी कृतियाँ अनुपलब्ध हैं। एक वैज्ञानिक की भाँति इस भाषा-वैज्ञानिक ( वैयाकरण ) ने प्रेक्षण, परिकल्पना, प्रयोग एवं सिद्धान्त द्वारा व्याकरणशास्त्र का साङ्गोपाङ्ग विवेचन प्रस्तुत किया। ऐसा साङ्गोपाङ्ग विवेचन कि जिससे कोई भी उत्तरवर्ती वैयाकरण सम्मोहित हुए बिना नहीं रह सका। वार्तिककार कात्यायन एवं भाष्यकार पतञ्जलि दोनों अपनी नितान्त मौलिकता के बावजूद पाणिनीय-अक्ष पर ही घूर्णन करते हैं। अष्टाध्यायी की न्यूनता का शोधन कर उसको सर्वाङ्गपूर्ण बनाने में मुनिद्वय की भूमिका अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। सच तो यह है कि मुनित्रय ( पाणिनि, कात्यायन एवं पतञ्जलि ) ने ऐसा परिनिष्ठित व्याकरण सिद्धान्त प्रस्तुत किया कि संस्कृत भाषा का परिष्कृत रूप स्थिर हो गया। पाणिनीय-तन्त्र की श्रीवृद्धि करने में सिद्धान्तकौमुदीकार भट्टोजि दीक्षित एवं परिभाषेन्दुशेखरकार नागेशभट्ट दोनों का महत्त्वपूर्ण योगदान है।

पाणिनीय परम्परा की यह सर्वाङ्गपूर्णता उसकी महत्ता एवं प्रबलता के साथ-साथ उसकी दुर्बलता की भी प्रत्यायक है। जैसा कि हम देखते हैं कि पाणिनीय पद्धति से इतर व्याकरण पद्धतियाँ — शाकटायन, कातन्त्र, चान्द्र, सारस्वत एवं जैनेन्द्र व्याकरण का पल्लवन तो हुआ किन्तु विकास नहीं हो पाया। पाणिनीय प्रभामण्डल की चकाचौंध में ये पद्धतियाँ निस्तेज हो गयीं। पाणिनीय तन्त्र की सार्वदेशिकता एवं चिरकालिकता की तुलना में ये पद्धतियाँ एकदेशीय एवं अल्पकालिक सिद्ध हुईं। वस्तुतः पाणिनि ने शब्दानुशासन का जो राजमार्ग बनाया उसमें अन्य पद्धतियाँ एक सम्पर्क मार्ग के रूप में तो जुड़ीं किन्तु कोई समानान्तर मार्ग बनाने में सफल नहीं हो सकीं। पाणिनीय परम्परा से इतर व्याकरण ग्रन्थों का पठन-पाठन लगभग नगण्य है जबकि इसके विपरीत पाणिनि एवं उनकी परम्परा में आने वाले अन्य वैयाकरणों की कृतियों का पठन-पाठन न केवल भारत में अपितु पूरे विश्व

में, शब्दानुशासन के मान्य मापदण्ड के रूप में किया जाता है। पाणिनीतर व्याकरण पद्धतियों की उपेक्षा संस्कृत व्याकरणशास्त्र का अत्यन्त न्यून पक्ष है जिससे कि तत्तद् व्याकरण कृतियों की पाणिनि की अपेक्षा सुगम एवं सुबोध प्रक्रियाओं एवं व्यवस्थाओं के अध्ययन एवं उसकी उपयोगिता से हमें वञ्चित होना पड़ता है।

पाणिनीय व्याकरण इतना सुव्यवस्थित, सुगठित, सुनियोजित एवं परिष्कृत है कि रञ्जमात्र भी स्वल्पन भाषा को विकृत कर देता है। पाणिनीय तन्त्र का अध्येता यह कल्पना ही नहीं कर पाता कि इस रचना-प्रक्रिया में कोई परिवर्तन हो सकता है। हम जितना ही इसका अध्ययन करते हैं उतना ही इसमें निमग्न होते जाते हैं। वस्तुतः पाणिनीय-तन्त्र की इसी सर्वाङ्गपूर्णता ने भाषा-जगत् में संस्कृत भाषा को मूर्धाभिषिक्त किया, सुर-भारती एवं देववाणी की पदवी से इसे विभूषित किया। तभी तो आज वैज्ञानिक संस्कृत भाषा को कम्प्यूटर में प्रयोग हेतु सर्वाधिक उपयुक्त मानते हैं। परन्तु 'दुष्' धातु के गुण से व्युत्पन्न 'दोष' की भाँति वर्तमान में पाणिनीय तन्त्र का यह गुण ही दोष बनता जा रहा है। जहाँ एक ओर महर्षि पाणिनि के भगीरथ प्रयास के परिणामस्वरूप संस्कृत भाषा इतनी परिष्कृत हुई और संस्कृत-वाङ्मय का इतना विस्तार हुआ वहीं दूसरी ओर वर्तमान समय में पाणिनीय व्याकरण इस भाषा के हास का एक कारण भी बनता जा रहा है। वस्तुतः आज विश्वविद्यालयों में संस्कृत के अध्येताओं की संख्या निरन्तर घटती जा रही है। इसके अन्य अनेक कारण हो सकते हैं किन्तु इसमें संस्कृत व्याकरण की जटिलता एक प्रकृष्ट कारण है। आज छात्रों का संस्कृत से मोह-भंग होता जा रहा है। वस्तुतः किसी भी वस्तु की नियमबद्धता की अति करने का एक दुष्परिणाम यह होता है कि उसका उन्मुक्त प्रसार अवरूढ़ हो जाता है। संस्कृत अलंकारशास्त्र के इतिहास में जब अलंकारवादी आचार्यों ने अलंकार को ही काव्य का आत्मा उद्घोषित किया, जब दाहकता<sup>१</sup>-विहीन अग्नि की भाँति अलंकारविहीन काव्य सर्वथा अकल्पनीय घोषित कर दिया गया, तब विचित्रमार्ग के अभ्यासी कवियों द्वारा मानों होड़ सी लगाकर कविता-कामिनी को इतने अधिक अलंकारों से अलङ्कृत किया गया कि वह अलंकारों के दुर्वह भार से निष्प्राण हो गयी, उसका दम तोड़ दिया गया। अस्तु,

वर्तमान युग में संस्कृत भाषा के समुचित प्रचार-प्रसार एवं विकास के लिए इसके व्याकरण के सरलीकरण एवं लघूकरण की परम आवश्यकता है। ऐसा सरलीकरण जो पाणिनीय व्याकरण के मानदण्ड के आत्मा के अनुकूल हो अर्थात् ऐसा संशोधन जो पाणिनीय व्याकरण की मूल-भावना को आघात भी न पहुँचाए और पाणिनीय प्रक्रिया की जटिलताओं एवं उलझनों से सर्वथा मुक्त हो। इस महनीय प्रयास हेतु कठोर श्रम, अध्ययन एवं शोध की आवश्यकता है। यह दुष्कर कार्य समयसाध्य एवं अध्ययन साध्य है। इस दिशा में व्याकरणशास्त्र की विभिन्न पद्धतियों का तुलनात्मक परिशीलन बहुत ही सार्थक सिद्ध हो सकता है। तुलनात्मक विवेचन से अपेक्षाकृत सुगम एवं सहज बोधगम्य

रचना-प्रक्रियाओं के चयन में सहायता मिलेगी।

पाणिनीय व्याकरण के परिप्रेक्ष्य में आचार्य हेमचन्द्र के शब्दानुशासन का अनुशीलन बहुत ही रुचिकर हो सकता है। पाणिनि, कातन्त्र एवं अपने पूर्ववर्ती वैयाकरणों की दाय को ग्रहण कर हेमचन्द्र ने ऐसे व्याकरण ग्रन्थ की रचना की जो अपेक्षाकृत ज्यादा व्यावहारिक, सरल एवं सुबोध है। बारहवीं शताब्दी में गुजरात में जन्मे आचार्य हेमचन्द्र अपनी प्रखर प्रतिभा एवं वैदुष्य के लिए प्रख्यात हैं।\* बहुमुखी प्रतिभा के धनी आचार्य हेमचन्द्र एक सफल वैयाकरण के साथ उच्चकोटि के आलंकारिक, कवि, दार्शनिक एवं लोकचरित्र के उन्नायक हैं। पाणिनि की अष्टाध्यायी के अनुकरण के आधार पर इन्होंने भी अपने शब्दानुशासन की रचना आठ अध्यायों में की है। इन्होंने अपने शब्दानुशासन में अष्टाध्यायी के सैकड़ों सूत्रों को यथावत् रूप में और सैकड़ों सूत्रों को किञ्चित् परिवर्तन के साथ रख दिया है। अष्टाध्यायी में उपन्यस्त समस्त वर्ण्यविषयों — संज्ञा, सन्धि, सुबन्त, अव्यय, तिङन्त, समास, कारक, तद्धितान्त एवं कृदन्त, का समावेश हेमचन्द्र ने अपने शब्दानुशासन में किया है। इस अनुकरण के बावजूद यह कृति अपनी विवेचन शैली एवं प्रक्रियागत वैशिष्ट्य की दृष्टि से सर्वथा एक मौलिक रचना है। इनके प्रयोगों एवं उदाहरणों में लोकभाषाओं का भी प्रामाण्य परिलक्षित होता है।

महावैयाकरण महर्षि पाणिनि के व्याकरण की प्रक्रिया की वैज्ञानिकता एवं सर्वश्रेष्ठता पर तो अंगुली उठायी ही नहीं जा सकती है, प्रश्न केवल प्रक्रियागत विस्तार, जटिलता एवं दुर्बोधगम्यता का है। इस दृष्टि से जब हम आकलन करते हैं तो पाते हैं कि पाणिनि रूपी सूर्य की जटिलता रूपी तपिश से व्याकुल अध्येता को हेम रूपी चन्द्र की सरलता रूपी चाँदनी से शान्ति एवं मनस्तोष प्राप्त होता है। यहाँ इसी सन्दर्भ में स्थालीपुलाकन्यायेन कतिपय बिन्दुओं पर उपर्युक्त विशेषताओं का अवलोकन किया जाता है —

१. शब्द-रूपों की सिद्धि के प्रकरण में जहाँ पाणिनीय व्याकरण की प्रक्रिया आगम, आदेश एवं अनुबन्धादि से जटिल हो गयी है वहीं हेम अपनी प्रक्रिया को इन उलझनों से मुक्त रखते हुए या तो कम से कम आगमादि का प्रयोग करते हैं या फिर शब्द रूपों के अनुरूप ही अपने सूत्रों द्वारा सीधे आदेश कर देते हैं। यथा — युष्मद् एवं अस्मद् शब्दों की रूप-सिद्धि में हेम का प्रक्रिया-लाघव —

१. त्वमहं सिना प्राक्चाकः। २/१/१२

२. यूयं वयं जसा। २/१/१३

३. तुभ्यं मह्यं डया। २/१/१४

४. तव मम डसा। २/१/१५

यहाँ जैसा कि सूत्रों से स्पष्ट है हेम ने तत्तद् विभक्तियों में तत्तद् रूपों को ही सीधे सूत्रों में उल्लिखित कर दिया है। इसके विपरीत पाणिनि इन रूपों की सिद्धि की

विस्तृत प्रक्रिया अपनाते हैं।

‘रमा’ अजन्त स्त्रीलिङ्ग शब्द की डित् विभक्तियों ( डे, डसि, डस्, डि ) के रूपों की सिद्धि के लिए पाणिनि को सर्वप्रथम ‘याद् आपः’ ७/३/१०५ सूत्र से याद् का आगम करना पड़ता है। तब अनुबन्ध-लोप एवं ‘आद्यन्तौ टकितौ’ १/१/४६ सूत्र याद् का डित् प्रत्ययों के पूर्व विधान तथा सन्धिकार्य के पश्चात् क्रमशः रमायै, रमायाः, रमायाः, एवं रमायाम् रूपों की सिद्धि होती है। जबकि आचार्य हेमचन्द्र बड़ी सरलतापूर्वक ‘आपो डितां यैयास्यास्याम्’ १/४/१७ सूत्र द्वारा उक्त रूपों की सिद्धि कर लेते हैं। यहाँ ‘डे, डसि, डस्, डि’ के स्थान पर उपर्युक्त सूत्र द्वारा सीधे क्रमशः यै, यास्, यास् एवं याम् आदेश कर दिये गये हैं। हेमचन्द्र की यह प्रक्रिया वर्तमान हिन्दी की शब्द संरचना से बहुत-कुछ मिलती है। जैसे —

बन + आवट = बनावट

जेठ + आनी = जेठानी

चाचा + ई = चाची

पण्डित + आऊ + पन = पण्डिताऊपन

लगभग इसी प्रकार हेमचन्द्र भी प्रातिपदिक के आगे रूप के अनुरूप प्रत्यय लगाकर सीधे शब्द का साधुत्व प्रदर्शित कर देते हैं। हिन्दी की शब्द-रचना पद्धति के अनुसार हेमचन्द्र की शब्द-सिद्धि प्रक्रिया को इस प्रकार प्रदर्शित किया जा सकता है —

रमा + डे ( यै ) = रमायै

रमा + डसि ( यास् ) = रमायाः

रमा + डस् ( यास् ) = रमायाः

रमा + डि ( याम् ) = रमायाम्

‘रामाणाम्’ की सिद्धि में पाणिनि ने ‘ह्रस्वनद्यापो नुट्’, ७/१/५४ सूत्र द्वारा नुट् का आगम किया है। तब अनुबन्धलोप एवं टित् होने के कारण आगम का पूर्वविधान करके नाम बनाया गया है, जबकि हेमचन्द्र ‘ह्रस्वापश्च’<sup>५</sup> सूत्र द्वारा सीधे बिना किसी लाग-लपेट के आम् के स्थान पर नाम् कर देते हैं।

‘सर्वेषाम्’ की साधनिका में सर्वप्रथम पाणिनि ने ‘आमि सर्वनाम्नः सुट्’<sup>६</sup> सूत्र द्वारा सुडागम करने का उपक्रम किया है। तदनन्तर प्रत्यय (आम्) के पूर्व आगम (स्) का विधान करके ‘साम्’ बनाया गया है, जबकि हेमचन्द्र ने ‘अवर्णस्यामः साम्’<sup>७</sup> सूत्र द्वारा आम् के स्थान पर निःसंकोच साम् आदेश कर दिया है। यहाँ इन दोनों स्थलों (रामाणाम् एवं सर्वेषाम्) पर हेमचन्द्र ने आगमों का प्रयोग नहीं किया है, जिससे कि इनकी साधनिका पाणिनि की अपेक्षा सरल, सहज एवं सुबोध बन पड़ी है।

हलन्त पुल्लिङ्ग विद्मस् शब्द से जस् विभक्ति में बनने वाले रूप ‘विदुषः’ की

साधनिका बतलाने के लिए पाणिनि को 'वसोः सम्प्रसारणम्' सूत्र द्वारा विद्वस् शब्द का सम्प्रसारण ( विदुस् ) करना पड़ता है। तदनन्तर रुत्वविसर्ग एवं मूर्धन्यादेश करके 'विदुषः' शब्द की रूप-सिद्धि होती है जबकि हेमचन्द्र ने 'क्वसुष्मतौ' सूत्र द्वारा विद्वस् के 'वस्' को 'उष' कर दिया है। यहाँ पाणिनि की प्रक्रिया-शैली कितनी जटिल एवं अरुचिकर है और इसी स्थल पर हेम की दृष्टि कितनी साफ है। उन्होंने प्रातिपदिक के आगे श्रूयमाण विकार को ताड़ा एवं शीघ्र ही सीधे 'उष' आदेश करके काम चलता किया।

२. सरलता के आग्रही हेमचन्द्र अपने सूत्रों की रचना में सुस्पष्टता एवं सुबोधता के लिए बहुत सतर्क रहते हैं। तभी तो पाणिनि का अनुकरण करते समय भी वे अपने उद्देश्य के प्रति सचेष्ट रहते हैं। जहाँ वे पाणिनि से कुछ ग्रहण करते हैं उनका वह ग्रहण भी अपने सरलता के सिद्धान्त के ढाँचे के अन्तर्गत ही होता है। यही कारण है कि हेमचन्द्र ने अनेकत्र पाणिनि के एक सूत्र को दो सूत्रों में और दो सूत्रों को एक सूत्र में परिवर्तित करके अपने शब्दानुशासन में उपन्यस्त किया है। जैसे —

(क) एक सूत्र का दो सूत्रों में विस्तारण —

'एचोऽयवायावः।'१० — पाणिनि

( I ) एदैतोऽयाया'११ — हेमचन्द्र

( II ) ओदौतोऽवावा'१२ — हेमचन्द्र

यहाँ पाणिनि के सूत्र में जटिलता है, क्योंकि किस स्थानी के स्थान पर कौन सा आदेश होगा, यह बताने के लिए अध्येता को सूत्र का विधिवत् परामर्श करना पड़ता है। जबकि हेमचन्द्र के दोनों सूत्रों में अल्पाक्षरता आ जाने के कारण अनायास विविक्तता आ गयी है।

(ख) दो सूत्रों का एक सूत्र में संक्षेपण —

( I ) 'रो रि'।'१३ — पाणिनि

( II ) 'द्वलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः'।'१४ — पाणिनि

'रो रे लुग् दीर्घश्चादिदुतः'।'१५ — हेमचन्द्र

३. हेमचन्द्र ने वर्णों के समूह का अधिधान करने वाली प्रत्याहार-पद्धति को नहीं अपनाया है। सीधे वर्णों को रखकर ही वह अपनी प्रक्रिया सम्पन्न करते हैं। प्रत्याहार-पद्धति वैज्ञानिक तो अवश्य है, परन्तु प्रत्याहार विस्मृत होने पर समस्या हो सकती है। वर्णों को स्मरण रखना सरल होता है। उपयोगिता की दृष्टि से माहेश्वर सूत्र एवं प्रत्याहार संस्कृत व्याकरणशास्त्र को पाणिनि की महत्त्वपूर्ण देन है। प्रत्याहार के अभाव में हेमचन्द्र एवं पाणिनि के सूत्र-संगठन में पर्याप्त भेद रहता है। जैसे —

'इको यणचि'।'१६ — पाणिनि

इवर्णादिरस्वे स्वरे यवरलम्।'१७ — हेम



‘आद् गुणः।’<sup>१७</sup> — पाणिनि

‘अवर्णस्येवर्णादिनैदोदरल्’<sup>१९</sup> — हेम

प्रत्याहार की पद्धति न अपनाने के कारण ही पाणिनि के अच् को ये स्वर कहते हैं, जिसे पाणिनि हल् कहते हैं, उसे ये व्यञ्जन कहते हैं, जिसे पाणिनि अल् कहते हैं उसे हेमचन्द्र वर्ण कहते हैं। पाणिनि की वर्णमाला (माहेश्वर सूत्र) को न मानकर हेमचन्द्र प्रचलित वर्णमाला को ही स्वीकार करते हैं। प्रचलित वर्णमाला इन्होंने सरलता की दृष्टि से ही अपनायी है। प्रचलित वर्णमाला का अभ्यासी अध्येता जब बाद में पाणिनीय वर्णमाला सीखता है तो उसे कठिनाई तो अवश्य होती है।

४. हेमचन्द्र ने पाणिनि की तुलना में बहुत कम संज्ञाएँ प्रस्तुत की हैं। संज्ञाओं की संख्या कम रहने पर एक लाभ यह होता है कि संज्ञाओं की विशिष्टताओं के कारण तत्तद् स्थलों में होने वाली भिन्न व्याकरणात्मक प्रक्रिया तकनीकों से बचा जा सकता है। हेम की अधिकांश संज्ञाएँ पाणिनि की संज्ञाओं से स्वरूप एवं अर्थ दोनों दृष्टियों से मिलती जुलती हैं। कुछ में केवल नाम मात्र का अन्तर है। पाणिनि की सवर्ण संज्ञा एवं हेम की स्व संज्ञा एक ही है। इसी प्रकार पाणिनि की प्रातिपदिक संज्ञा एवं हेम की नाम संज्ञा समान है। हेम ने वाक्य संज्ञा दी है पर पाणिनि वाक्य संज्ञा नहीं दे पाये थे। हेम की ह्रस्व, दीर्घ एवं प्लुत संज्ञाएँ पाणिनि का ही अनुधावन करती हैं।

५. हेमचन्द्र के प्रयोगों में लोकभाषा की विशेषताओं का भी समावेश पाया जाता है। ‘शिट्याद्यस्य द्वितीयो वा’<sup>२०</sup> सूत्र द्वारा उन्होंने व्यवस्था दी है कि श, ष और स के परे रहते वर्ण के प्रथम अक्षर को द्वितीय अक्षर होता है। उदाहरणार्थ —

क्षीरम् - ख्षीरम्

अप्सरा - अप्सरा

डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री के अनुसार “भाषा विज्ञान की दृष्टि से हेम का यह नियम अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इसी कारण हेम का उक्त नियम सभी संस्कृत वैयाकरणों की अपेक्षा नया है।”<sup>२१</sup> यहाँ यह संकेत करना है कि हेम के उक्त प्रयोग का प्रेरक कात्यायन का सम्भवतः वह वार्तिक रहा होगा जिसे उन्होंने पाणिनि के इस ‘ङ्णोः कुक् टुक् शरि’ ८/३/२८ सूत्र के ऊपर लिखा था। कात्यायन का वार्तिक है —

(वा०) चयो द्वितीयाः शरि पौष्करसादेरिति वाच्यम्।

यहाँ कात्यायन ने स्पष्ट रूप से शर् के परे रहते च्यु के स्थान पर द्वितीय अक्षर का विधान किया है।

उदाहरण—

प्राङ् क् षष्ठः, प्राङ् ख् षष्ठः, प्राङ् षष्ठः।

अतः उक्त स्थल में हमें यह स्मरण रखना चाहिए कि इस प्रवृत्ति के प्रथम

उद्भावक कात्यायन मुनि हैं और हेमचन्द्र अपने उक्त नियम में कात्यायन की दाय ग्रहण करते हैं। अस्तु,

अपने सरलता के सिद्धान्त के अनुरोध से हेमचन्द्र ने धातु प्रक्रिया में पाणिनीय लकार का सर्वथा परित्याग कर कातन्त्र प्रक्रिया की काल-अवस्थाओं को स्वीकार किया है। ये काल-अवस्थाएँ पाणिनि के दस लकारों की भाँति संख्या में दस ही हैं — वर्तमाना, सप्तमी, पञ्चमी, ह्यस्तनी, अद्यतनी, परोक्षा, आशीश्वस्तनी, भविष्यन्ती और क्रियातिपत्ति।<sup>२२</sup> वस्तुतः हेम ने उपलब्ध व्याकरण पद्धतियों के जिस प्रकरण को सरल बोधगम्य पाया, उसी प्रक्रिया को निःसंकोच रूप से अपने शब्दानुशासन में स्थान दिया।

अतएव, उपर्युक्त परीक्षण के आलोक में हम स्वाभाविक रूप से यह राय बना सकते हैं कि संस्कृत व्याकरण के सरलीकरण की दिशा में हेमचन्द्र के शब्दानुशासन का अध्ययन अत्यन्त उपयोगी है। पाणिनीय व्याकरण की तकनीकी जटिलताएँ हेम के साँचे में ढलकर अत्यन्त सहज एवं सुबोधगम्य हो जाती हैं।

### सन्दर्भ

१. द्रष्टव्य, अष्टाध्यायी — लोपः शाकल्यस्य'। ८/३/१९, एवं अवङ् स्फोटायनस्य। ६/१/१२३
२. 'तात वाग्भट! मा रोदीः कर्मणां गतिरीदृशी ।  
दुष् धातोरिवास्माकं गुणो दोषाय केवलम् ॥  
द्रष्टव्य : काव्यप्रकाश, आचार्य विश्वेश्वर, भूमिका, पृ० ८१
३. अङ्गीकरोति यः काव्यं शब्दार्थावनलङ्कृती ।  
असौ न मन्यते कस्मादनुष्णमनलं कृती ॥  
— जयदेव, चन्द्रालोक १/८
४. आचार्य हेमचन्द्र और उनका शब्दानुशासन : एक अध्ययन — डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री, पृ० ९।
५. शब्दानुशासन, १/४/३२
६. अष्टाध्यायी, ७/१/५२
७. शब्दानुशासन, १/४/१५
८. अष्टाध्यायी, ६/४/१३१
९. शब्दानुशासन, २/१/१०५
१०. अष्टाध्यायी, ६/१/७८
११. शब्दानुशासन, १/२/२३
१२. वही, १/२/२४

१० : श्रमण/अप्रैल-जून/१९९६

१३. अष्टाध्यायी, ८/३/१४

१४. वही, ३/३/१११

१५. शब्दानुशासन, १/३/४१

१६. अष्टाध्यायी, ६/१/७७

१७. शब्दानुशासन, १/२/२१

१८. अष्टाध्यायी, ६/१/८७

१९. शब्दानुशासन, १/२/६

२०. वही, १/३/५९

२१. आचार्य हेमचन्द्र और उनका शब्दानुशासन : एक अध्ययन, डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री, पृ० ७३।

२२. शब्दानुशासन, ३/३/६ से ३/३/१७ तक

\*प्रवक्ता, संस्कृत

पं० कमलापति त्रिपाठी राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय,  
चन्दौली, वाराणसी





## वसुदेवहिंडी का समीक्षात्मक अध्ययन

डॉ० कमल जैन

वसुदेवहिंडी आचार्य संघदासगणि और धर्मसेनगणि दो आचार्यों के संयुक्त प्रयास से बनाये गये उपवन के रूप में हमारे समक्ष आती है जो विविध कथानकों, दृष्टान्तों के पाद-पादपों से युक्त, जीवन के उतार-चढ़ाव, वसन्त, पतझड़, मानस की प्रवृत्तियों के पुष्प-काँटों, सौन्दर्य-माधुर्य, विविध राग-रंग एवं रसों से युक्त है।

वसुदेवहिंडी में केवल वसुदेव के कलात्मक भ्रमण वृत्तान्त ही नहीं किन्तु ऐसी अनेक कथाएँ हैं जो मनोरंजक और शिक्षावर्धक होने के साथ लोकसंस्कृति के अनेक पक्षों का भी दिग्दर्शन कराती हैं। कथानक संयोजना में कथाकार ने पुराणोक्त महापुरुषों के जीवनचरित, मुनिधर्म, तत्त्व-उपदेश, अलौकिक तत्त्वों का स्मिरूपण, अवान्तर कथाओं की संयोजना करके अपनी सृजनशक्ति का परिचय दिया है। परम्परागत मर्यादाओं और व्यवस्थाओं का अतिक्रमण करते हुए रचनाकार ने इसे नूतन रूप प्रदान किया तथा सामाजिक और सांस्कृतिक क्षेत्र में आदर्श के नाम पर समझौता नहीं किया। उन्होंने उदार मानवीय साहसपूर्ण दृष्टिकोण के अनुरूप इसे नूतन प्रवृत्तियों और मौलिक भावनाओं से अनुप्राणित किया है। यद्यपि इस कथा ग्रंथ में शृंगाररस का बाहुल्य है, पर आचार्यों ने सृजनात्मक कल्पनाशक्ति से लौकिक कथा के आवरण में अध्यात्मिकता का पुट देकर इसे रोचक बनाया है। एक ओर वैराग्य के माध्यम से अध्यात्म की पराकाष्ठा है तो दूसरी ओर शृंगारिकता की भी चरम सीमा है। कथानायक १०० शादियाँ करके सांसारिक सुख भोगों में ही व्यस्त रहता है। भारतीय साहित्य में ऐसे बहुत कम ग्रन्थ हैं जिसमें शृंगारिकता और सांसारिक विषयभोगों को इतनी प्रमुखता दी गई हो। मानव जीवन के इस भोगमय सरस जीवन को प्रायः परोक्ष में ही रखा जाता है।

जैन विद्वानों ने युग की माँग को देखा, उनके शुष्क उपदेशों का प्रभावोत्पादक शैली के बिना कोई मूल्य नहीं था। दूसरी तरफ जैन परम्परा में शृंगार कथा को सुनने सुनाने का निषेध भी था पर श्रावक वर्ग को आध्यात्मिकता की ओर आकर्षित करने के लिए आचार्यों ने अपनी रचनाओं में उपदेशात्मक शैली के साथ-साथ शृंगारिक शैली का भी सहारा लिया। पौराणिक कथाओं के समाज में अत्यन्त प्रिय होने के कारण भाव बोध कराने में बड़ी सुगमता हो जाती है। अतः आचार्यों ने विभिन्न कथाओं को ब्राह्मण परम्पराओं से ग्रहण कर उसे जैनधर्म के अनुरूप प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

लोकप्रचलित राम, वृष्णिवंश आदि हिन्दू-परम्परा के महापुरुषों की कथाएँ प्रस्तुत करके सर्वसाधारण के लिए उसे रुचिकर बनाया है। **वसुदेवहिंडी** में हमें ऐसी बहुत सी कथायें मिलती हैं जिनका उद्गम वैदिक साहित्य में है।

**प्रद्युम्न की जन्मकथा** — कृष्ण की प्रिय पत्नी रुक्मिणी के पुत्र प्रद्युम्न का जन्म होते ही अपहरण हो गया था। उसे पूर्वजन्म की शत्रुतावश विद्याधर धूमकेतु ने अपहरण करके भूतरमण अटवी की शिला पर मरने के लिये छोड़ दिया जिसे निस्सन्तान विद्याधर दम्पति ने उठा लिया और पुत्रवत पालन किया।<sup>१</sup> वैदिक पुराणों के अनुसार रुद्र के कोप से भस्म होकर कामदेव दूसरे जन्म में रुक्मिणी के गर्भ से कृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न के रूप में उत्पन्न हुआ किन्तु शाम्बर नामक मायावी दैत्य ने बालक प्रद्युम्न को अपना शत्रु समझकर सूतिका-गृह से चुरा लिया और समुद्र में फेंक दिया। वहाँ एक मत्स्य ने उसे निगल लिया। धीवरों के द्वारा वही मत्स्य शाम्बर के भोजनगृह में पहुँच गया। मत्स्य के पेट से निकले बालक को मायावती (रति) जो कामदेव के भस्म हो जाने पर शाम्बर के घर में दासी का काम करती थी, उस बालक का पोषण करने लगी।

**रामायण कथा** — सहस्रग्रीव की वंश परम्परा में विंशतिग्रीव राजा की पत्नी कैकस (कैकसी) से तीन पुत्र रावण (रामण), कुम्भकर्ण, विभीषण तथा दो पुत्रियाँ त्रिजटा और शूर्पनखी (शूर्पनखा) थी। रामण की मन्दोदरी से शादी हुई, ज्योतिषियों ने भविष्यवाणी की कि मन्दोदरी की कन्या कुलविनाशनी होगी। इसलिए कन्या के पैदा होने पर उसे रत्नमंजूषा में रखकर उसे जनक की उद्यानभूमि में रखवा देना। ऐसा ही हुआ। जनक ने उस कन्या का पुत्री की तरह पालन किया। उन्होंने दशरथ के पुत्र राम का सीता तथा अन्य पुत्रियों का भरत, शत्रुघ्न और लक्ष्मण से विवाह कर दिया। राजा दशरथ ने शयनोपचार और युद्ध प्रवीणा पत्नी को दो वर दिया। वृद्धावस्था को प्राप्त दशरथ ने जब पुत्र राम को राज्य देना चाहा तो कैकयी ने अपनी दासी मंथरा के परामर्श से राम का वनवास और भरत का राज्याभिषेक दो वर उनसे माँगा। उसके अनुसार पिता की आज्ञा को शिरोधार्य करके राम का वीरवेष में लक्ष्मण और सीता के साथ वनवास में चले जाना, बाद में राजा दशरथ की मृत्यु हो जाने पर भरत के प्रार्थना करने पर भी राम का अयोध्या नहीं लौटना, ध्रातृ भरत का राम की पादुका रखकर राज्य शासन चलाते रहना, वन में शूर्पनखी के अनर्गल वार्तालाप और सीता के सतीत्व को नष्ट करने की धमकी सुनकर 'स्त्रियाँ अवध्य होती हैं' इसलिये उसका नाक-कान काट कर छोड़ देना, नककटी सूर्पनखा का सीता के अपहरण के लिये भाई को प्रोत्साहित करना, मारीचि का स्वर्णमृग का रूप धारण करके सीता को लुभाना, लक्ष्मण का राम की सहायता के लिए जाना, रामण का सीता का अपहरण करना, मार्ग में जटायु से युद्ध, वन में सीता की खोज में घूमते हुए सुग्रीव और उसके मंत्री हनूक से मैत्री होना, दूत भेजकर भरत से चतुरंगिणी सेना मँगवाना, समुद्र पर पुल बनवाना, विभीषण का राम से मिल जाना, राम और रावण का युद्ध, लक्ष्मण द्वारा

रावण का वध, रावण का दाह संस्कार, विभीषण का राज्याभिषेक तथा राम, सीता, लक्ष्मण का अयोध्या लौट आना, प्रजाजनों द्वारा राम का राज्याभिषेक, राम द्वारा अर्धभारत क्षेत्र को विजयी बनाना आदि प्रसंग वर्णित हैं। थोड़ी बहुत फेरबदल के साथ जैन रामायण कथा पौराणिक रामायण कथा से बहुत मिलती है।<sup>३</sup> यहाँ रावण को रामण नाम विद्याधर राजा बताया गया है। सीता उसी की पुत्री है। रावण का वध राम से नहीं वरन् लक्ष्मण से दिखाया गया है। शेष कथा में कोई विशेष अन्तर नहीं है।

रामायण में जैसे सीता मृगशावक को देखकर उसको लेने के लिये मचल जाती है, उसी प्रकार वसुदेवहिंडी में नीलयशा मयूर शावक को देखकर उसे लेने के लिये हठ करती है। वसुदेव मयूर शावक को लेने जाता है और लेने जाने में सीता की तरह नीलयशा का अपहरण हो जाता है।<sup>३</sup> जिस प्रकार विरहाग्नि से तप्त रावण की अशोक वाटिका में शृंगार रहित सीता तपस्विनी की तरह रहती है उसी प्रकार सोमश्री मानसवेग के प्रमदवन में विद्याधरी कन्याओं के बीच तपस्विनी की तरह रहती है। यहाँ हनुमान के स्थान पर वह सोमश्री प्रभावती को वसुदेव के पास सन्देश देकर भेजती है।<sup>४</sup> अन्य स्थान पर ज्योतिर्वन में रत्नों से चित्रित मृग की ओर रानी सुतारा का आकृष्ट होना, उसको लेने के लिए आग्रह करना, राजा द्वारा मृग का पीछा करना, मायावी मृग का उड़ जाना, रानी का अपहरण हो जाना, अपहरणकर्ता के पास रानी को छुड़ाने के लिये दूत भेजना, इंकार हो जाने पर युद्ध करना आदि रामायण के सीताहरण से काफी साम्य रखता है।<sup>५</sup> राजा सगर के ६० हजार पुत्रों द्वारा अष्टापद पर बने जिनायतन की रक्षा के लिये उसके चारों ओर खाई खोदना, नागलोक में पानी चला जाना, क्रोधित नाग का सगर पुत्रों को भस्म कर देना, भगीरथ प्रपौत्र का नागदेवता की पूजार्चना करके गंगा का मार्ग समुद्रगामी बना देना,<sup>६</sup> पौराणिक कथा के अनुसार सगर पुत्रों का गंगा को पृथ्वी पर लाने के लिये रास्ता बनाने के लिये खाई खोदना, नाग का क्रोधित होकर सगर पुत्रों को भस्म कर देना तथा शिव को भक्ति-पूजा से प्रसन्न करके भगीरथ का गंगा को पृथ्वी पर लाना आदि वर्णित है। भगीरथ द्वारा गंगा के पृथ्वी पर अवतरण के प्रसंग में आचार्य ने जैन परम्परा का पुट देकर शिव को प्रसन्न करने के स्थान पर नाग को प्रसन्न किया है। गंगा को स्वर्ग से न उतार कर उसका रुख बदल दिया है और न ही मृत आत्माओं की शान्ति के लिये प्रेतकर्म किया है।

महाभारत में जैसे पाण्डु को शाप मिला था कि अगर वह स्त्री से समागम करेगा तो उसकी मृत्यु हो जायेगी, उसी प्रकार वसुदेवहिंडी में उद्यान के फल-फूल नष्ट हो जाने पर क्रोधित चण्ड कौशिक द्वारा राजा को शाप दिया गया कि मैथुन सम्प्राप्ति के समय राजा के मस्तिष्क के १०० टुकड़े हो जायेंगे।<sup>७</sup> तापसी का सभामण्डप में प्रवेश करना, राजा को औरस पुत्र को स्वीकार करने के लिये कहना, राजा को कुछ याद न आना, तापसी को झूठी कहना, स्वाभिमानिनी तापसी का पुत्र को वहीं छोड़कर चला जाना,

आकाशवाणी होना कि वह ऋषिदत्ता का पुत्र है, राजा का तापसवन में जाना, याद आना, तापस कन्या से विवाह करना, कन्या को गर्भ रह जाना, राजा का शीघ्र बुला लेने का आश्वासन देना, वापस आकर राज्यकार्य में व्यस्त हो जाना आदि प्रकरण कालिदास के 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' से काफी साम्य रखते हैं।<sup>१७</sup> मानसवेग के प्रमदवन में रहते हुए सोमश्री का यह प्रण करना कि जब तक वह मानसवेग के फड़फड़ाते हुए अंगों से ताजा बहता हुआ खून नहीं देखेगी उसे शान्ति नहीं मिलेगी।<sup>१८</sup> महाभारत में चीरहरण के बाद द्रौपदी का प्रण करना कि जब तक वह दुःशासन की जंघा के रक्त से अपने बाल नहीं धोयेगी तब तक वह चोटी नहीं बाँधेगी, महाभारत कथा से काफी साम्य रखता है। इसी प्रकार कृष्ण जन्म की कथा के बारे में कहा गया है कि देवकी की शादी में कंस की पत्नी जीवयशा उन्मुक्त होकर नाच रही थी तो अतिमुक्तक ऋषि ने उसको चेतावनी दी की जिसकी शादी में प्रमुदित होकर नाच रही हो उसी का सातवाँ पुत्र तुम्हारे पति का वध करेगा। इसी कारण कंस ने उसकी सब सन्तानों को वसुदेव से माँग लिया था। कंस ने उसकी छः सन्तानों को तो मार दिया, सातवीं को वसुदेव ने दिव्यशक्ति के सहारे यशोदा की कन्या से बदल दिया।<sup>१९</sup> हिन्दू पुराणों में भी कंस द्वारा देवकी और वसुदेव को कारागृह में बंद रखकर छः सन्तानों को मार देने का उल्लेख है। सातवीं सन्तान को वसुदेव ने नंद और यशोदा की कन्या से बदल कर रक्षा की थी।

कंस के जन्म की कथा के सन्दर्भ में कहा गया है कि कंस को पता चल गया था कि उसके पिता उग्रसेन ने उसे अशुभ जानकर काष्ठ मंजूषा में रखकर नदी में बहा दिया था। उसने प्रजाओं को प्रसन्न करके स्वामित्व तथा बदले की भावना से अपने पिता उग्रसेन को राज्यच्युत करके बंदी बना दिया।<sup>२०</sup> वैदिक परम्परा में बताया गया है कि कंस बचपन से दुष्ट और क्रूर था, उसने बड़ा होते ही अपने पिता को कैद करके राजगद्दी पर अधिकार कर लिया तथा अपनी बहन और उसके पति को कारागृह में डाल दिया।

जैन परम्परा में विष्णु कुमार मुनि की कथा कहते हुए कहा गया है कि महापदम का नमुचि पुरोहित एक बार जैन श्रमणों से शास्त्रार्थ में हार गया। अपनी हार का बदला लेने के लिए जब राज्य सत्ता उसके अधिकार में आई तो उसने जैन मुनियों को सात दिन में राज्य से बाहर जाने का आदेश दे दिया। उन दिनों चौमास चल रहा था, चौमास में जैनमुनि यात्रा नहीं करते। मुनियों ने कहा शरद ऋतु में वह चले जायेंगे, नमुचि ने कहा अगर वे सात दिन से अधिक रहेगे तो वध्य माने जायेंगे। संघ पर संकट आया जान विष्णुमुनि आकाश मार्ग से आये, उन्होंने पुरोहित को बहुत समझाया पर पुरोहित अपनी जिद से टस से मस नहीं हुआ, तब विष्णुकुमार ने उससे तीन पग भूमि माँगी ताकि साधु उस पर अपना शरीर त्याग कर सकें। नमुचि मान गया, भूमि नापने के लिए विष्णु कुमार ने अपना शरीर इतना विराट कर लिया कि एक पैर मन्दराचल के शिखर पर रखा। दूसरा कदम उठाया तो सारा विश्व काँपने लगा। देवता लोग एकत्रित हो गये, उनके प्रार्थना करने

पर विष्णु मुनि अपने पूर्व रूप में आ गये। प्रजा ने राजा को बंदी बनाकर उसके पुत्र को राजगद्दी पर बिठा दिया। अहिंसावादी जैन परम्परा में नमुचि को दंड स्वरूप देश से निर्वासित कर दिया गया।<sup>१०</sup> वैदिक पुराणों में भी विष्णु और बलि की कथा कहते हुए कहा गया है कि बलि का आतिथ्य स्वीकार करके वामन ने तीन पग भूमि माँगी थी। बलि ने संकल्प करके तीन पग भूमि दे दी। वामन ने त्रिविक्रम नाम से विराट रूप धारण करके एक पग से सम्पूर्ण पृथ्वी और दूसरे से स्वर्ग को नाप दिया। जब तीसरा पद उठाया तो नापने के लिये कुछ बचा ही नहीं था। उसी समय जाम्बवान ऋषिराज ने भगवान् के विराट रूप की प्रदक्षिणा की तथा सभी दिशाओं में भगवान् के उपस्थिति की घोषणा की। इसी प्रकार परदारगमन की कथा कहते हुए कहा गया है कि इन्द्रकेतु का पुत्र वासव स्त्रीलोलुप था। वह गौतम ऋषि के परोक्ष में उनकी पत्नी विष्ठाश्रव मेनका की पुत्री अहिल्या को गौतम के आश्रम में देखकर उस पर आसक्त हो गया। वह उसके साथ सम्भोग में तल्लीन था तभी फल-फूल और समिधा लेकर गौतम ऋषि आ गये। ऋषि को देखकर वासव डर गया और बैल का रूप धारण कर लिया, किन्तु गौतम सब जान गये। उन्होंने उसे (वासव को) मार दिया।<sup>११</sup> वैदिक परम्परा के अनुसार इन्द्र अहिल्या के पास आया था। ऋषि ने इन्द्र को शाप दे दिया और अहिल्या को भी शाप से पत्थर बना दिया। आचार्य ने तापस जमदग्नि ऋषि का उल्लेख किया है जिसकी दाढ़ी में घोंसला बना कर रहने वाले पक्षियों ने सन्तान परम्परा का उच्छेद करने के कारण ऋषि को पापी कहा। पक्षियों के वार्तालाप से प्रेरित होकर ऋषि ने राजकन्या से शादी कर ली। एक बार कन्या के पिता राजा जितशत्रु पुत्र कामना से ऋषि के पास आये। ऋषि ने दो चरुक मंत्र दिये, एक उसकी पत्नी रेणुका के लिये दूसरी उसकी माँ के लिए। रेणुका की माँ ने सोचा ऋषि ने अवश्य पुत्र के लिए विशिष्ट चरुक दिया होगा, उसने अपनी पुत्री के चरुक से अपना चरुक बदल लिया। यथा समय रेणुका ने परशुराम को जन्म दिया। एक बार राजा अनन्तवीर्य ने गायों के साथ रेणुका का अपहरण कर लिया। परशुराम ने मंत्रित फरसा लेकर राजा का वध करके अपनी माँ को छुड़ा लिया। जब अनन्तवीर्य के पुत्र कार्तवीर्य को पता चला तो उसने जमदग्नि को मार दिया। पिता की मृत्यु सुनकर परशुराम ने कार्तवीर्य को मार दिया। क्रोध में आकर उसने सात बार पृथ्वी को क्षत्रियों से रहित किया। कार्तवीर्य के पुत्र सुभौम ने २१ बार पृथ्वी को ब्राह्मणों से रहित किया।<sup>१२</sup>

अथर्ववेद की उत्पत्ति का उल्लेख करते हुए कहा गया है, सांख्य शास्त्र के कुशल सुलसा परिव्राजिका और त्रिदंडी याज्ञवल्क्य के संसर्ग से पिप्पलाद उत्पन्न हुआ था जिसने मातृमेघ, पितृमेघ और अभिचार मंत्रों से युक्त अथर्ववेद की रचना की थी।<sup>१३</sup>

नारद और पर्वतक के आख्यान में कहा गया है कि आचार्य क्षीरकदम्ब वसु, पर्वतक और नारद तीन शिष्यों को आयुर्वेद पढ़ाते थे। एक बार तीनों शिष्यों की परीक्षा के लिये एक-एक बकरा दिया गया और उन्हें ऐसे स्थान पर वध करने के लिये कहा गया



जहाँ कोई भी न हो। पर्वतक ने एक निर्जन स्थान देखकर बकरे का वध कर दिया पर नारद और वसु ने बकरे का वध नहीं किया क्योंकि उनके विचार में भगवान् की दृष्टि से कुछ भी ओझल नहीं है। आचार्य समझ गये कि उनका पुत्र नरकवासी होगा। उपाध्याय की मृत्यु हो गई। कालक्रम में वसु राजा बना। एक बार नारद और पर्वतक के बीच शास्त्रार्थ हुआ। 'अजेहिं जटियत्वं' का अर्थ पर्वतक ने 'बकरा' और नारद ने 'तीन वर्ष पुराना धान' किया। पुत्र की जीत की आशा करने वाली गुरुपत्नी का मन रखने के लिए वसु ने भी पर्वतक का साथ दिया। तभी से हिंसावादी यज्ञों का प्रचलन हुआ।<sup>१६</sup> मध्यम खंड में कनकवती लम्ब में नल-दमयन्ती के कथानक का उल्लेख हुआ है। नल अपने भाई कुबेर से जुए में हारकर पत्नी के साथ जंगलों में निकल जाता है। पत्नी को मार्गजन्य विपत्तियों से बचाने के लिये एक पत्र पर उसके पिता का पता लिखकर नल पत्नी को जंगल में सोती हुई छोड़ कर चला जाता है। दमयन्ती जागने पर नल को न पाकर विलाप करती है। एक सार्थवाह के साथ कई स्थानों पर होती हुई अपने पिता के पास पहुँच जाती है। उधर नल कुबड़े के परिवर्तित रूप में एक राजा के यहाँ सारथी के रूप में नौकरी करता है। नल को ढूँढने के लिये दमयन्ती के स्वयंवर की घोषणा की जाती है। समय इतना कम रखा जाता है कि उतने कम समय में नल जैसा कुशल सारथी ही पहुँच सकता है। दोनों का मिलन होता है। नल दैवीय पासों से कुबेर को भी जीत लेता है। इस प्रकार वर्षों तक राज्य को भोगते हुए अन्त में नल और दमयन्ती श्रमण दीक्षा ले लेते हैं।<sup>१७</sup>

**वसुदेवहिंडी** गुणाढ्य की बृहत्कथा का परिवर्तित रूप माना जाता है। किंवदंती है कि गुणाढ्य ने सात लाख श्लोकों से युक्त **बृहत्कथा** का निर्माण किया और सातवाहन की सभा में प्रस्तुत किया, किन्तु उन्हें विशेष प्रोत्साहन नहीं मिला। गुप्से में आकर गुणाढ्य ने छः लाख श्लोकों को नष्ट कर दिया। बाकी के एक लाख श्लोकों का सातवाहन ने संरक्षण किया। वह रचना इतनी सरस, शृंगारिक और विस्तृत थी कि परवर्ती रचनाकारों में बहुत लोकप्रिय हो गयी। वह संघदासगणि की **वसुदेवहिंडी**, बुधस्वामी की **बृहत्कथा श्लोकसंग्रह**, सोमदेव भट्ट की **कथासरित्सागर** और क्षेमेन्द्र की **बृहत्कथामंजरी** की आधारोपजीव्य बन गई। **वसुदेवहिंडी** में **बृहत्कथा** की परम्परा का ही नव्योद्भावन हुआ है। आचार्य देवन्द्रमुनि जी **वसुदेवहिंडी** को जैन प्राकृत साहित्य का उपजीव्य कहा है। जैन रचनाकार **वसुदेवहिंडी** से विशेषकर प्रभावित थे। इसके छोटे-छोटे कथानकों को कथा सूत्र मानकर उत्तरकाल में प्राकृत, संस्कृत और अपभ्रंश के अनेक कथाग्रंथों का विकास हुआ।

**वसुदेवहिंडी** में आए चारुदत्त और गणिका का कथानक **मृच्छकटिक** के चारुदत्त और वसन्तसेना कथानक से साम्यता रखता है। चारुदत्त का कथानक जिनसेन के **हरिवंशपुराण**, **समराइच्चकहा**, **कुवलयमाला**, **बृहत्कथा श्लोकसंग्रह**, **हरिषेण** की **बृहत्कथाकोष** के व्यापारियों की कथाओं से काफी साम्यता रखता है। **वसुदेवहिंडी** की

सोमश्री और सुहरण्या का चरित्र बृहत्कथा श्लोकसंग्रह की मदनमंतुका के चरित्र से मेल खाता है। विष्णु कुमार की कथा हरिवंश पुराण, बृहत्कथा श्लोकसंग्रह, हरिषेण की बृहत्कथाकोष, गुणभद्र के उत्तरपुराण, नेमिचन्द्र की उत्तराध्ययन टीका, हेमचन्द्र के त्रिषष्टिशालाकापुरुषचरित्र और जिनसेन के आदिपुराण में भी है।

वल्कलेचीरी और कोक्कास बढई की कथा आवश्यकचूर्णि में भी है। मधुबिंदु का दृष्टान्त समराइच्चकहा, धर्मपरीक्षा, आवश्यकचूर्णि और हेमचन्द्र की स्थविरावली में भी है। हाथी जैन मुनि का उपदेश सुनकर संवेग को प्राप्त हो गया, कर्दम में फँस जाने पर भी वह यावज्जीवन आहार त्याग कर देता है। यह कथा मरण-समाधि प्रकीर्णक और हरिषेण के बृहत्कथाकोष में भी पाई जाती है। समराइच्चकहा के कथानक का आधार वसुदेवहिंडी में आई कंस के पूर्व जन्म की कथा है जिसमें एक तपस्वी मास खमन के पारणा के लिये राजा के घर जाता है पर स्मृतिदोष के कारण राजा आहार नहीं देता है और क्रोधित तपस्वी अगले जन्म में बदला लेने का निदान करता है। जम्बूचरित का और अगडदत्त चरित का मूलस्रोत भी इसी कथा ग्रंथ में है।

वसुदेवहिंडी में कई कथानक रूढ़ियों का प्रयोग किया गया है जिससे कथा के कलेवर को विस्तार मिला है। मुनि का आगमन होने पर अपने प्रश्नों का समाधान करना, गुणश्रवण, चित्रदर्शन तथा प्रथम दर्शन से नायक-नायिका में प्रेम हो जाना, धन से परिपूर्ण जहाज का डूब जाना, अन्य विपदाओं का आना, दोहद की इच्छा, पूर्वजन्म का संस्मरण, पूर्वजन्म के उपकार का बदला चुकाना, तपस्वी का शाप, जैनमुनि से पूर्वभव सुनकर विरक्त होना, विलीन होते हुये मेघ देखना, कनपटियों पर सफेद बाल देखना, अवधिज्ञानी मुनि के द्वारा आयु की समाप्ति जानकर मुनिदीक्षा ग्रहण करना, जैन मुनि के उपदेश सुनकर वैभव-त्याग, शिशु को मंजूषा में बंद करके प्रवाहित कर देना, पुण्य फलस्वरूप सब कलाओं की प्राप्ति, चारणमुनि या केवली से कन्या का भविष्य पूछना, मुनि के द्वारा वर की भविष्यवाणी करना, उस वर की प्राप्ति के लिये प्रयत्नशील होना आदि इस कथानक के कलेवर में समाहित हैं। इस कथानक रूढ़ि का वसुदेवहिंडी में सबसे अधिक प्रयोग हुआ है जिसमें मरणासन्न पशु पक्षी का नवकार मंत्र सुनकर स्वर्ग में जाना, स्वमित्र के प्रबोधनार्थ स्वर्ग के देवता का मध्यलोक तथा अधोलोक में जाना, मुनिदर्शन से जाति स्मरण ज्ञान होना, विधिवत साधना से रोगों का नष्ट होना, स्वप्नों द्वारा शुभाशुभ संकेत, अपने कुकृत्यों की आलोचना से पाप मुक्ति आदि कथानक रूढ़ियाँ मुख्य हैं।

आचार्य संघदासगणि ने विविध आध्यात्मिक भावों की प्रतीकों के माध्यम से सहज अभिव्यक्ति की है। प्रतीकों के माध्यम से उन्होंने जनसामान्य को धर्म के सिद्धान्तों की ओर आकर्षित किया है। वन में सार्थ के साथ गहन करते हुए, वणिक के काकनियों के बोरे के कट जाने पर निर्जन वन में सार्थ का साथ छोड़कर काकनियों को इकट्ठे करने में प्रवृत्त हो जाना और चोर लुटेरों के द्वारा लुट जाने वाले वणिक की तुलना विषयसुख

के लोभ में फँसे हुए, मोक्ष के साधनों की उपेक्षा कर सांसारिक विषयों में लीन व्यक्ति से की गयी है, जो अन्त में पश्चात्ताप को ही प्राप्त होता है।<sup>१८</sup> गणिका के पास आने वाले ग्राहकों का सत्कार, सम्मान के लिए गणिका से स्मृतिचिह्न के रूप में आभूषणों के उपहार स्वीकार करने वालों में एक रत्नों के पारखी द्वारा गणिका का पादपीठ माँगने के दृष्टान्त में अध्यात्म मार्ग पर चलने वाले पथिक की तुलना रत्नों के पारखी वणिक से की गई है। कहा गया है कि दिव्य सुख भोगने वाले ग्राहक राजपुत्र हैं, गणिका धर्मश्रुति की प्रतीक है, गणिका के आभूषण व्रत, तप, त्याग के प्रतीक हैं, रत्नपरीक्षा की कुशलता सम्यग्ज्ञान है एवं रत्न का व्यापार महासुख है।<sup>१९</sup>

गर्भवास दुःख के प्रसंग में ललितांगद के दृष्टान्त में परपुरुष में आसक्त रानी का दासी द्वारा संकेत देकर पर पुरुष को बुलाकर अपने आवास में रखना, राजा को संदेह होने पर अन्तःपुर में राजपुरुषों द्वारा छानबीन करवाना, रानी का ललितांगद को शौचालय ( संडास ) से जाने वाले नाले में छुपा देना, नाले से बाहर निकलने पर रोगी ललितांगद की धायमाता द्वारा सेवाशुश्रूषा करके स्वस्थ करना। ललितांगद जीव का प्रतीक है, रानी के दर्शन से सम्बद्ध समय, मनुष्य जन्म का प्रतीक है, दासी इच्छा का प्रतिरूप है। रानी के आवासगृह में ललितांगद का प्रवेश विषय सम्प्राप्ति का प्रतीक है। राजपुरुष रोग, शोक, भय, शीत, उष्ण आदि ताप के प्रतिरूप हैं, शौचालय से निकलना प्रसव का प्रतीक है और दाई देह पुष्टि देने वाली कर्मविपाक की प्रतीति करवाती है।<sup>२०</sup> इस दृष्टान्त का हरिभद्र ने भी उल्लेख किया है।

**मधुबिन्दु दृष्टान्त** — जंगल में भटके हुए व्यापारी के पीछे जंगली हाथी लग गया, जान बचाता हुआ वह एक बरगद के पेड़ पर पहुँचा जिसकी जड़ें एक कुएँ में लटक रही थीं। वह जड़ों को पकड़ कर कुएँ में लटक गया। कुएँ के तल पर विशाल अजगर फुफकार रहा था। दीवारों के चारों ओर कुटिल सर्प डँसने को तैयार थे, काले और सफेद दो चूहे उस जड़ को काट रहे थे, जिस डाली को वह पकड़े हुआ था। हाथी सूँड़ से उसे पकड़ने का प्रयत्न कर रहा था। पेड़ पर मधुमक्खी का छत्ता लगा था, हाथी के पेड़ को झझोड़ने से छत्ते से शहद टपकने लगा। शहद की बूँद उसके मुँह में भी पड़ी, वह उसके स्वाद में मदमस्त हो गया। इस दृष्टान्त में मधु का आकांक्षी पुरुष संसारी जीव है, जंगल संसार का प्रतीक है, बनैला हाथी मृत्यु का, कुआँ देवभव और मनुष्यभव का, अजगर नरक और तिर्यञ्च गति का, सर्प क्रोध, मान, माया, लोभ का, बरगद की जड़ जीवनकाल का, चूहे कृष्ण और शुक्ल पक्ष के, पेड़ कर्मबन्धन रूप अज्ञान का, मधुबिन्दु इन्द्रिय विषय तथा भौरे विभिन्न व्याधियों के प्रतीक हैं।<sup>२१</sup> इस दृष्टान्त का आवश्यकचूर्णि और समराइच्चकहा में भी उल्लेख हुआ है।

**कौवे और हाथी का दृष्टान्त** — एक मृत हाथी के शरीर को भेड़ियों और सियारों ने खाना शुरू किया। कुछ कौवे भी उसी रास्ते से हाथी के पेट में चले गये। गर्मी

के कारण हाथी का शरीर सिकुड़ गया इसीलिए कौवे शरीर से बाहर नहीं आ पाये। वर्षाकाल में बाढ़ आ जाने से हाथी का शरीर समुद्र में पहुँच गया, वहाँ मगर और मछलियाँ उसे खाने लगे। कौवों को बाहर आने का रास्ता तो मिल गया लेकिन कहीं भी किनारा न मिलने के कारण वे मर गये। कौवे संसारी जीव का प्रतीक हैं, हस्ती के कलेवर में प्रवेश करना मनुष्य जीवन के कलेवर का, मांस विषयभोगों का, मार्ग अवरोध सांसारिक प्रतिबंध का, जल प्रवाह का, विक्षोभ मरण काल का, कलेवर से निकलना दूसरे भव में सक्रान्त होने का प्रतीक है।<sup>२३</sup> एक भैसे का उदाहरण भी मिलता है जिसमें बताया गया कि जंगल के सरोवर में जंगल के जानवर पानी पीने आते थे। एक भैंसा जलाशय में आकर अवगाहन करता, सींग मार-मार कर सारा पानी गंदा कर देता जिससे पानी पीने के लिये बेकार हो जाता। यहाँ जंगल संसार का प्रतीक है, आचार्य सरोवर के पानी का, धर्म सुनने की अभिलाषा वाले प्राणी जानवरों का, पानी को गंदला करने वाला भैंसा मिथ्यावादी का प्रतीक है।<sup>२३</sup> आचार्य ने लौकिक आख्यानों को भी अपनी रचना में स्थान दिया है जिनमें गाड़ी, तीतर और टग, बालक के लिये दो सौतों का झगड़ना, कबूतर और बहेलिये की कथा आदि का उल्लेख हुआ है। आचार्य ने पौराणिक कथाओं, लौकिक कथाओं, अवान्तर कथाओं, दृष्टान्तों के साथ जैन शलाका पुरुषों के चरित्रों का भी वर्णन किया है। ऋषभदेव, शान्तिनाथ, कुंथुस्वामी और अरनाथ के चरित्रों के साथ उनके पूर्वजन्मों का भी उल्लेख किया है। इसमें चरित, कथा और पुराण तीनों तत्त्वों का सम्मिश्रण मिलता है। मध्यम खंड में प्रधान वर्ण्यविषय यौवन और शृंगार हैं। वसुदेव के उदात्त चरित में धर्मसेन गणि ने इनका समवेश किया है। जहाँ तक कथानक का सम्बन्ध है वह बहुत परिमित है। इस प्रकार कुछ कथानक रूढ़ियों ने इसके कलेवर को अवश्य पुष्ट किया है।

**वसुदेवहिंडी** की भाषा प्रांजल और व्यवस्थित है। द्वितीय यमखंड की भाषा लम्बे समासों और उपमाओं के कारुण दुरूह हो गई है और कथा प्रवाह में भी शिथिलता आ गई है। आचार्य संघदासगणि ने अनेक सुभाषितों, लोकोक्तियों और वाग्धाराओं का प्रयोग करके अपनी विलक्षण प्रतिभा का परिचय दिया है, यथा —

१. सैकड़ों लोकों में कोई एक ही शूर होता है, हजारों में एक पंडित, वक्ता लाखों में एक होता है, दाता तो बहुत कम होते हैं, नहीं भी होते। ( पृ० ३१२ )

२. इन्द्रियों को जीतने में समर्थ ही शूर होता है, धर्मान्तरण करने वाला ही पंडित होता है, सत्यव्रती ही वक्ता होता है और जीवों की भलाई में लगा रहने वाला दाता। ( पृ० ३१३ )

३. जो शत्रु को मार डालता है वह उत्तम पुरुष है, जो शत्रु के साथ मरता है वह मध्यम है, जो शत्रु से मारा जाता है वह अधम। ( पृ० ३८१ )

४. विभिन्न कर्मों में तप ही ऐसा है जो बहुत लाभकारी है जिसके करने में लज्जा नहीं होती, जो शरीर के नष्ट होने पर नष्ट नहीं होता। ( पृ० ३४८ )

५. पंडितजन स्वाधीन सुख का त्याग नहीं करते। ( पृ० १९ )
६. लोक धर्म को अनुवर्ती पति को अपनी पत्नियों का भरण पोषण करना चाहिए। ( पृ० २६ )
७. परिपक्व वय में धर्मान्तरण करने वाले निन्दित नहीं होते। ( पृ० १९ )
८. पंडित पुरुष सत्पात्रों में अर्थ वितरण की प्रशंसा करते हैं। (पृ० ३२)
९. पुत्र की श्रद्धा से माता-पिता की तृप्ति होती है। (पृ० ३५)
१०. सिद्धि सुख निरुपम और निर्बाध है। (पृ० ३९)
११. ज्योतिर्मयी स्त्री को उल्का के समान, पुष्पलता जैसी को साँपिन के समान जानकर जो त्याग करता है वह पण्डित है। (पृ० ३१४)
१२. सज्जन का वचन निष्ठुर नहीं होता, श्रेष्ठ कमल दुर्गन्धी नहीं होता, युवती के हृदय में धैर्य नहीं होता, नृपतियों का स्थिर रहना शोभा नहीं देता। (पृ० ३१४)
१३. बुद्धिमान व्यक्ति के लिए शोक विष के समान त्याज्य है। (पृ० ९८३)
१४. भावी का उल्लंघन नहीं किया जा सकता। (पृ० ९८६)
१५. अपने से अधिक बलशाली व्यक्ति को विशेष अस्त्र मायाचार से मार देना चाहिए। (पृ० १२६)
१६. युद्ध में प्रवृत्त रहकर महिला का मुँह देखने वाला हार का भागी बनता है। (पृ० १२७)
१७. व्यसनी धन का नाश कर देता है। (पृ० ४३३)
१८. श्रेष्ठ पुरुष को वरण करने वाली स्त्री हीन कुल-जाति की होकर भी लोक में सम्मान पाती है। (पृ० ७०६)
१९. अतीत की बातों को न सोचकर भविष्य पर ध्यान देना चाहिए। (पृ० १२२)
२०. ऐसा कोई स्थान नहीं जो अनित्यता के लिए उल्लंघनीय हो। (पृ० ७२६)
२१. ज्ञानी पुरुष गंगा की लहरों को गिन सकते हैं, हिमालय की ऊँचाई नाप सकते हैं, किन्तु स्त्रियों के हृदय को नहीं जान सकते। (पृ० १३८)
२२. स्त्रियाँ इस लोक और परलोक दोनों में दुःख का कारण हैं। (पृ० १३४)
२३. भविष्य का लाभ असंदिग्ध हो तो वर्तमान को नहीं छोड़ा जाता। (पृ० ४०)
२४. जब तक शरीर स्वस्थ है तब तक परलोक हित का कार्य कर लेना चाहिए। (पृ० ६३)
२५. गणिका का हृदय क्षणिक रमणीय होता है। (पृ० ९३)
२६. जिसने दुःख का अनुभव नहीं किया, जो न दुःख-निवारण में समर्थ है, और

- न ही दूसरों के दुःख में दुःखी हुआ है उसे अपना दुःख नहीं कहना चाहिए। (पृ० ९७)
२७. श्रेष्ठ पुरुष ही मर्यादा का उल्लंघन करने लगेंगे तो सामान्य पुरुष का क्या कहना। ( पृ० १६० )
२८. ताल वृक्ष की नुकीली पत्ती नष्ट हो जाने पर पूरा पेड़ ही टूट जाता है। ( पृ० ८४५ )
२९. अविज्ञात कुल में कन्या देना उचित नहीं। (पृ० ११३७)
३०. काँच के पीछे दौड़ने वाला व्यक्ति यदि आप्तजनों द्वारा सन्दिष्ट रत्न को न लेना चाहे, तो उसे क्या माना जाये। (पृ० ५१५)
३१. कौन ऐसा होगा जो निधि देखकर लेने के निमित्त ज्योतिषी से पूछेगा। (पृ० ६३५)
३२. जो नेत्रवान होकर भी सूर्य के उदय होने पर आँखें बंद किये पड़ा रहता है उसके लिये सूर्योदय निरर्थक है। (पृ० १३)
३३. बाण लक्ष्य के अनुसार चलते हैं। (पृ० ३९)
३४. कोकटुक अन्न का पाक नहीं होता। (पृ० १०६७)
३५. राहु मुख से निकला चन्द्रमा। (पृ० ९८७)
३६. भूख से पीड़ित को धर्म कहाँ। (पृ० १०५१)
३७. मूल के नाश से वृक्ष का भी नाश हो जाता है। (पृ० १०९२)
३८. राजा अप्रसन्न होने पर यम और प्रसन्न होने पर कुबेर के समान होता है। (पृ० ११०३)
३९. स्वामी को भृत्य की पत्नी की भी अभिलाषा नहीं करनी चाहिये। (पृ० ७६०)
४०. साधुओं का स्वभाव नवनीत की तरह मृदुल तथा चन्दन की भाँति शीतल होता है। (पृ० ३९९)
४१. मनोज्ञ सौरभ सम्पदा से भरपूर खिला चन्दन एकान्त वन में रहता है तो उसके लिए क्या भौरों को कहना पड़ता है। (पृ० ११११)
४२. तेलरहित दीपक के समान। (पृ० ७६)
४३. सूखी घास का गड्ढर लेकर आग के पास जाना। (पृ० ७९)
४४. मुट्ठी में रक्खी हुई चिकनी बालू। (पृ० ७९)
४५. फलहीन वृक्ष को पक्षी भी छोड़ देते हैं। (पृ० ८७)
४६. लक्ष्मी जितनी जल्दी आती है उतनी जल्दी लौट भी जाती है। (पृ० १०५)
४७. प्रभात के सूर्य को सूप से ढका नहीं जा सकता। (पृ० २०४)

४८. रत्न जो आभरण में स्थान नहीं पाता विनाश को प्राप्त हो जाता है।  
(पृ० ४०३)

४९. हस्तामलक की भाँति। (पृ० ११)

५०. धरती का आदमी चरण किरण कैसे छू सकता है। (पृ० २३)

५१. सिंह के दाँत किसने गिने हैं। (पृ० ३१९)

५२. उत्साह में ही लक्ष्मी निवास करती है। (पृ० ४४५)

५३. दरिद्र मृतक के समान है। (पृ० ४४५)

५४. असहाय व्यक्ति का हस्तगत अर्थ भी नष्ट हो जाता है। (पृ० २४)

५५. चन्द्रमा में किसकी दृष्टि नहीं रमेगी। (पृ० २२)

५६. उद्यम के साथ सिद्धियाँ आ मिली हैं। (पृ० ९८३)

५७. नई माँ का दूध पीना। (पृ० ११६)

५८. मयूर की भाँति हर्षित होना। (पृ० ६)

५९. घृतसिक्त अग्नि की तरह दीप्त होना। (पृ० ४२)

६०. खाली मुठ्ठी से फुसलाना। (पृ० ७०८)

६१. मेघ को देखकर आनन्दित होना मोर की तरह। (पृ० २२३)

६२. कुएँ का मेढ़क होना। (पृ० ३३०)

६३. कमलवन के विकसित होने से घनपटल में छिपी रश्मियों वाले सूर्य का उदय सूचित हो जाता है। (पृ० ६३५)

६४. तारिकाओं से घिरी रोहिणी। (पृ० ३६)

६५. परकटे पक्षी की भाँति निश्चला। (पृ० ६४३)

६६. भोजन के अभाव में उपवास का बहाना क्यों। (पृ० ७६७)

६७. रस्सी से छूटी इन्द्र पताका के समान। (पृ० ७८२)

६८. समुद्र से प्रतिहत नदी की भाँति। (पृ० ८३०)

६९. संयोग का अवसान वियोग में होता है। (पृ० ९८३)

७०. पायस में घी की धारयें गिरी हैं। (पृ० ७८१)

७१. नेत्रहत्य पवन की भाँति। (पृ० ६५३)

७२. आरम्भ करते ही लक्ष्मी का नाश हुआ। (मध्यम खंड, पृ० १४९)

७३. अधिक की इच्छा करते थोड़े से भी हाथ धो बैठे। (वही)

इस प्रकार धर्मसेनगणि की भाषा अलंकारमयी है। उपमा, उत्प्रेक्षा से युक्त है, लम्बे समासों का प्रयोग किया गया है। वर्णन बड़े जीवन्त, रोचक और शृंगारिक हैं, संवाद

बड़े चुस्त हैं, प्रणय दृश्यों के कथन में रचनाकार सिद्धहस्त हैं। प्रणय दृश्य का एक उदाहरण देखिए : चुलहिमवंत पर्वत पर पहुँच कर वहाँ के सुहावने वातावरण में प्रभावती और वसुदेव रति-क्रीड़ा में संलग्न हो गये।

( कथगहाकडढिउण्णति वदणा परित्तविता, कमसो य वामकरदलो दरेण पायिसं टाटा लगा से रति करंडग करमोरु-उरुजयल रति लक्खे पासंस पदेसेसु कुकंदरेसु च सुंदरी )।

कथाकार की कल्पना अद्भुत और अनूठी है। विमान का वर्णन देखिये :

हम्मियतलट्टियेन दइयासहितेणं भिन्नदनीलंमरगत मणहर भणि कियेण समातेणं णभेण एज्जमाणं विमाणं। अवि य जं तं अणेग खम्ब सतसन्नविट्ठु णील ट्टिय सालभजिया कटितं णाणामणी-कणग-रयण-किरण पवरं करणिगरं पज्जिलंत जलजलतजलेत-कंट-पहसंत पिंगल कराल वेलवित सूरकिरण-फलंबवायी पंचवन्निय-मणि-रयण-कुरंत कोहिम्-तलं, चामीकर-किरण-परिकुरंत उस्सेह सस्सिरीट रुयं, धक्कट्टग-लट्ट-मत-सिलिट्ट सुविसिट्ट कह कम्मक पहट्टगयगंध पवर भूसियम हसत-मूस्टि कमल जला-पवर-रमणुम्मिल्ल किरण-पुउरिय-लय-पंकम-वियसिय-रयमड्डयंदणजहं, चारुट्टिमोहत सारार-तरंग-भंगुर-भ्रमग-भतुल्ल सत्तप ससंत-कंट मणि-णाग-पूप वर तुरंग, मदार, कुंजर, रूक, चमर, सरभ, संदर, हरि, हरिण, सारस, चकोर, वर, वसभ-सुर-सुहग या ण-रवमर-मोर-पारावत-जुगल-मणि-सकल-सोहित-तितंवं।<sup>२५</sup>

शब्द-योजना में चातुर्य कथाकार की प्रतिभा का दिग्दर्शन कराता है। प्रकृति को मानवीय रूप देने में दोनों रचनाकारों ने अपनी प्रतिभा तथा कल्पना शक्ति का सुन्दर परिचय दिया है। प्रकृति के फल-फूलों, पशु-पक्षियों के अंगों की उपमा देकर मानवीय सौन्दर्य का प्रदर्शन किया है। उपमायें भी ऐसी हैं जिनका जनसाधारण के साथ अत्यधिक परिचय है। जम्बूकुमार का रंग कमल और कनेर के पुष्पों की केशरिकाओं के समान निर्मल था, ताराओं से घिरे शरद् पूर्णिमा के चन्द्र की तरह जम्बूकुमार पत्नियों के साथ बैठा था।<sup>२५</sup> चंडाल कन्या वर्षाकाल में उमड़ती मेघराशि के समान काली थी। आभूषणों से अनुरजित वह तारों से सुशोभित रजनी की तरह लगती थी।<sup>२६</sup> देवों और मनुष्यों की परिषद् में बैठे शान्तिनाथ द्वितीय शरद चन्द्र की भाँति प्रतीत होते थे, डूलते हुए चामरों से हंसों के बीच देवसुन्दरियों के मुखकमलों जैसे, सुर-आसुरों से घिरे गजकुल से सेवित वन की भाँति, चारण श्रमणों के सान्निध्य से प्रसन्न सरोवर की भाँति फहराती हुई विविध ध्वजाओं से अलंकृत धवल मेघ के समान दीखते थे, विनय से झुके हुए मनुष्य वृंद के बीच बैठे भगवान् फलभार से झुके शालिक्षेत्र की उन्नत भूमि के समान दिखायी देते थे। मुनियों को तपोलक्ष्मी से परिदीप्त, शरत्कालीन सरोवर की तरह प्रसन्न हृदय वाले, शारदीय चन्द्र की भाँति सौम्य कहा गया है।<sup>२७</sup> वासुदेव कृष्ण श्याम मेघ की छवि के धारक थे, विकसित कमल जैसी आँखें थीं, पूर्ण चन्द्रमा के समान मुख था, सर्प के फन के समान दोनों भुजायें थीं, हाथ पल्लव के समान कोमल थे, कटिभाग सिंह की भाँति स्थिर और सुस्थित था,



हरिण के समान जाघें थीं, मृदुल ताँबे की तरह पैरों के नाखून थे। वाणी सजल मेघ की भाँति गम्भीर थी।<sup>२८</sup> वज्रसंघ के रूप का वर्णन करते हुए कहा गया है कि वह अतिशय सुन्दर थे, मुख शरत्कालीन चन्द्रमा के समान सौम्य था, तरुण सूर्य की रश्मियों से प्रस्फुटित पुण्डरीक के समान नेत्र थे, गरुड़ की भाँति लम्बी और ऊँची नाक थी। कुन्द-कली माला के समान स्वच्छ और स्निग्ध दंतपंक्ति थी, वृषभ की भाँति कंधे थे, नगर के कपाट के समान विशाल छाती थी, सिंह और घोड़े के समान कटिभाग गोल था, दोनों जाँघें हाथी की सूँड़ के समान थीं।<sup>२९</sup> नारी सौन्दर्य की तुलना करते हुए वे कहते हैं — पद्मावती के मुख की छवि कमल के समान थी, शरीर की कान्ति कदली और लवंगलता जैसी थी, हाथ नये कोमल पत्ते जैसे थे।<sup>३०</sup> जाम्बवती के मुख की शोभा चन्द्रमा और कमल से भी बढ़कर थी, आँखें भौरों से युक्त नीलकमल के समान थीं, पीनोत्रत सघन स्तन तालफल के समान थे, पल्लवयुक्त लताओं के समान बाहें थीं, जंघाओं का विस्तार भगीरथी के पुल के समान था, दोनों पैर कूर्म की आकृति जैसे थे, वाणी के माधुर्य से वसन्त की कोकिला को परास्त करती थी, सुकुमारता में शिरीष पुष्प के गुच्छे के समान थी।<sup>३१</sup> गान्धर्वदत्ता के शरीर की कान्ति तरुण रविमण्डल के समान थी, पयोधर ताल फल के समान थे, मांसल नितम्ब कमलिनी के समान पृथुल थे, परिपुष्ट जघन प्रदेश कमलदल की भाँति सुकुमार और चिकना था और हाथ सरस कमल की भाँति कोमल और प्रशस्त थे, कलहंस जैसी ललित गति से चलती थी।<sup>३२</sup> प्रभावती के सौन्दर्य का वर्णन करते हुए कहा गया है कि उसका सौन्दर्य विद्युत् सा था, उसके लाल होंठ बिम्ब-फल की तरह थे, कौमुदी के पूर्ण चन्द्र की भाँति उसका मुख था, उसकी भौहें कामदेव के धनुष की भाँति थीं, उसकी सुन्दरता को देखकर वसुदेव को मेनका, रम्भा, उर्वशी और चित्रा का भ्रम हो गया। वह मद्यपेय की तरह थी जिसे लेते ही फिर प्यास अनुभव होने लगती थी।<sup>३३</sup> सरोवर का वर्णन करते हुए कहा गया है कि वह साधु के शील की तरह निर्मल, माँ के हृदय की तरह भय रहित, गुरुजनों के उपदेश की तरह शीतल, गंधी की दुकान की तरह सुगन्धित और जिनमत की तरह गम्भीर था।<sup>३४</sup> पानी के प्रवाह से परिभुक्त अत्यन्त सूक्ष्म बालू का प्रदेश परिधान के भीतर से निकला हुआ जावकरस की भाँति पाण्डरवर्ण की युवती के पयोधर सा लग रहा था। प्रभावती के हृदय की तुलना नदी के स्वच्छ जल से, नितम्बों की नदी के तट से, नाभि की नदी के भँवर से, हाथों की तट पर उगे पादपों से की गई है।<sup>३५</sup> झूला झूलती हुई कन्या का वर्णन करते हुए कहा गया है कि स्वर्णस्तम्भों पर वने झूले में झूलती हुई कन्या अँधेरे को चीर कर निकलती हुई सूर्य किरणों की तरह, बादलों में चमकती हुई बिजली की तरह, समुद्र में पड़ती हुई चंद्रछाया की तरह, आकाश से टूटे तारे की तरह, जलती हुई अग्नि की लपटों की तरह दिखाई देती थी।<sup>३६</sup> हाथी की सुन्दरता का वर्णन करते हुए कहा गया है कि हाथी की सूँड़ लम्बी और सुदर्शन थी, उसका विशिष्ट पृष्ठभाग धनुषाकार था, उज्ज्वल नखों से मंडित उसके पैर कछुए के समान थे, वराह की भाँति

उसका जघन प्रदेश था, उत्तम बकरे की भाँति उसका पेट था, दाँत मूसलाधार शुभ्र वर्ण के थे। अधर सरस दाडिम पुष्पगुच्छ की छवि को भी मात करने वाले थे।<sup>३५</sup> दोनों ही लेखकों ने प्रकृति के अंगों और मानवीय अंगों-उपांगों का साम्य करके अपने प्रकृति के ज्ञान का प्रदर्शन किया है।

वस्तु-वर्णन बड़ा विशिष्ट है। जंगल का वर्णन करते हुए कहा गया है कि जंगल अनेक प्रकार के वृक्षों से अतिशय गहन था, विभिन्न लताओं ने आपस में मिलकर बड़ी-बड़ी झाड़ियों का रूप ले लिया था। गिरि कन्दराओं से झरने झर रहे थे, उनका पानी जमीन पर फैला हुआ था। विविध पक्षियों की आवाजों से वह अनुनादित था, झिल्लियों के कर्कश झंकारों से गूँज रहा था। जिससे वह जंगल अतिशय भयावना लग रहा था। उस जंगल में कहीं बाघ, कहीं रीछ और कहीं भालू की गुराहट हो रही थी। कहीं बानर चिचिया रहे थे। अजीब कर्णकर्कश चीखें सुनाई दे रही थीं, कहीं पुलिंदों द्वारा वित्रासित बनैले हाथी जोर-जोर से चिघाड़ रहे थे। उनके द्वारा शल्लकी वन के तोड़े जाने की मड़मड़ाहट सुनाई पड़ रही थी। उस जंगल में आटा, चावल, उड़द, फूटी हुई घी की हाँडी, भात खाने की थाली, तेल के बर्तन, अनेक प्रकार के छाते, जूते बिखरे हुए थे।<sup>३६</sup> हाथी और कुत्तों के युद्ध से वित्रासित नगरवासियों का उल्लेख बड़ा सजीव लगता है — जैसे मतवाला हाथी कुत्तों के पास आया। कुत्ते चारों ओर से हाथी पर टूट पड़े। उसके गंडस्थल, मुँह और सूँड़ को नोच-नोच कर खाने लगे, फलतः फीलवान सहित हाथी भाग खड़ा हुआ। दूसरे हाथी भी डरकर परस्पर संघर्ष करने लगे। संध्या के समय घरों और सैन्यशिविरों को रौंदने एवं वर्षाकालीन मेघ के समान चिघाड़ने लगे। स्वामी, भाई, मामा, बचाइए, इस प्रकार कहकर भागते हुए चारों ओर भटकने लगे।<sup>३७</sup>

आचार्यों की गरिमामयी उदात्त शैली में गम्भीर रसव्यंजना भी विद्यमान है। नवरसों में शान्त, वीर, करुणा और शृंगार रस का प्रमुख रूप से चित्रण हुआ है। प्रेम के विविध भाव प्रसंगों का उन्मुक्त चित्रण हुआ है। यह प्रेमविह्वलता का आविर्भाव दोनों ओर दिखा कर प्रेम को उभयापेक्षी बनाया है। भाव सरल एवं रमणीय है। वियोग चित्र भी उच्चकोटि की साहित्य कलात्मकता से युक्त है। अधिकांश पात्र जीवन के भोगों को भोगकर अन्त में संसार से विरक्त हो, जैनधर्म में दीक्षित हो मुनि जीवन बिताते हुए दिखाई देते हैं। इस प्रकार शृंगार रस और वीर रस का शान्त रस में ही पर्यवसान दिखाई देता है।

यौवन के सुखभोग तथा विलास के प्रसंगों द्वारा शृंगार की अभिव्यंजना की गई है। काम की दृष्टि से तीन प्रकार के पुरुषों का उल्लेख किया है, जिसे सब चाहते हैं वह भी सबको चाहता है वह उत्तम, जिसे दूसरे तो चाहते हैं पर वह नहीं चाहता वह मध्यम, तीसरा जो दूसरों को चाहता है दूसरे उसे नहीं चाहते वह अधम है। युवक युवतियों की अनुरागमय चेष्टाओं के साक्षात्कार से रतिभाव उद्बुद्ध होकर आनन्ददायक अनुभूति में परिवर्तित होने पर नायिका की अवस्था का वर्णन किया गया है। नये वर्षाकाल की पहली

मेघधारा से अभिसिक्त धरती की भाँति विमलसेना प्रथम समागम के बाद रति रसायण जनित कुशल धम्मिल के हृदय में समा गई।<sup>३९</sup> प्रेयसी को देखते ही नये वर्षाकाल में खिले कदम्बवृक्ष के समान अगड़दत्त के रोमांच से रोये खड़े हो गये, कामशर से सन्तप्त हृदय से उसका आलिंगन किया। अनंगशर के ताप से शोषित शरीर बाली वह प्रिय को पाकर उसके अंगों में उसी प्रकार समा गयी जैसे सूर्य के ताप से तप्त व्यक्ति तालाब को पाकर उसके जल में समा जाता है।

बुद्धिसेन शाम्बकुमार के भुक्तावशिष्ट फूल, इत्र, वस्त्र और ताम्बूल सुहिरण्या के पास ले गया। सुहिरण्या की माँ की आज्ञा से दोनों का मिलन हुआ। पंचलक्षण रूप, रस, गंध, स्पर्श, स्वर से विषयसुख में मुग्ध हो गए।<sup>४०</sup> गणिका के गर्भगृह में बिछावन पर बुद्धिसेन बैठ गया। उसके पैरों का संवाहन करते हुए दासी अपने स्तनों से उसके वक्षस्थल की संवाहना करने लगी। हाथ की मालिश से बढ़कर पयोधर के स्पर्श से उत्तेजित होकर हस्तिनी और वनगज की भाँति दोनों सुरत-क्रीड़ा में रत हो गये।<sup>४१</sup> वासगृह में वेगवती में वसुदेव को विविध प्रकार के मिष्ठानों के साथ मद्य सै पूर्ण मणिपात्र दिया। मद्य के नशे में वसुदेव ने अपनी प्रिया को विछावन में डाल दिया। उसे ऐसा लगा जैसे प्रिया से प्रथम समागम हो रहा है। रति से परिश्रान्त उसको रात बीतने का पता नहीं चला।<sup>४२</sup> मध्यम खंड में विमान की यात्रा करते हुए प्रभावती और वसुदेव कौमुदी उत्सव का रसास्वादन करते हैं। कहीं ग्वाले रास नृत्य कर रहे थे, कहीं गोपाल दम्पति रतिक्रीड़ा के लिए घने वन्य प्रदेशों में जा रहे थे, कहीं कदम्ब वृक्ष से बने हल के साथ फूलों से सुसज्जित कृषक प्रिया के साथ रमण कर रहा था, कहीं प्रणय-क्रीड़ा में संलग्न प्रेमी प्रेयसी के पाँव छू रहा था, कहीं कोई स्त्री कामदेव की पूजा कर रही थी, कहीं कन्या का हरण करते हुए पुलोमी का नाटक मंचित किया जा रहा था। फूलों से लदा शतपर्ण वृक्ष उसके पास पड़ा शिलापट्ट प्रणयक्रीड़ा के लिये आमंत्रण दे रहा था।<sup>४३</sup> वसुदेव ने सुरुचिपूर्ण सजे सोमश्री के वासगृह में मद्यपान करके, चिर विरह से खेदित प्रिया के साथ आलिङ्गन, चुंबन आदि विविध क्रियाओं से रतिसुख का रसास्वादन किया।<sup>४४</sup>

शृंगार के संयोग और विप्रलम्भ दोनों रूपों का सजीव अंकन हुआ है। विरही और विरहणियों के शब्द मार्मिक हैं, उनके हृदय की पीड़ा के द्योतक हैं, हृदय को स्पर्श करने वाली करुण वेदना पुकार हैं, विरही के प्रति सहानुभूति जागृत करने वाले हैं। पद्मावती का अपहरण हो जाने पर वसुदेव का विलाप बड़ा हृदय विदारक है। वह अपनी सुध-बुध खोकर प्रलाप करने लगता है। प्रिया के बारे में पूछ रहा है, 'हे चक्रवाक, तुमने मेरी सहचरी को देखा है। हे हंस, तुम्हारी गति का अनुकरण करने वाली मेरी प्रिया कहाँ गयी, हे मृग, तुम्हारे जैसी आँखों वाली मेरी प्रिया की गति क्या हुई। वह पेड़ों और पत्थरों में भी प्रिया का अस्तित्व मानता हुआ उन पर चढ़ जाता है, उन्हें निहारता है, वस्तुस्थिति को समझ जाने पर नीचे उतर आता है।<sup>४५</sup> सोमश्री के दिखाई न देने पर वसुदेव की आँखें आसुओं से अवरुद्ध हो गईं, उसे क्रीड़ा के निमित्त गई हुई मानकर वह कभी लतागृह,

जलगृह और कदलीगृह में ढूँढ़ने लगा, आवाज देने लगा, 'प्रिये, क्यों कुपित हो गयी गई हो, मैं तुम्हारी इच्छा का दास हूँ, मुझे दुःख मत दो, कहाँ छिपी हो, इस प्रकार बोलता हुआ वह घूमने लगा। दासियाँ इस स्थिति में स्वामी को देखकर बड़ी मुश्किल से आँसुओं को रोकती थीं। वह तरह तरह से उसे प्रसन्न करने का प्रयत्न करती हुई साथ नहीं छोड़ती थीं। उसका मन गाने-बजाने, खाने-पीने, लिखने-पढ़ने किसी में भी नहीं लगता था। चिन्तातुर प्रिया के सामने न रहने पर भी उसे सामने खड़ी देखता, रात नींद भी नहीं आती थी। इस प्रकार विसूरते हुए वह समय काटने लगा।<sup>५६</sup> धम्मिल के विरह में गणिका वसन्ततिलका ने अपने सब आभूषणों का त्याग कर दिया था, मंगल निमित्त केवल दाहिने हाथ में एक आँगूठी पहनी थी। उसके कपड़े मैले और जीर्ण हो गये थे, उसने ताम्बूल खाना छोड़ दिया था, उसके सभी अंग दुर्बल हो गये थे, कपोल पीले पड़ गये थे, आँखें आँसुओं से भरी रहती थीं।<sup>५७</sup>

विरह पीड़ित वेगवती वसुदेव के विरह में एकाग्र मन से विद्यायें नहीं सीख पा रही थी। वह अपनी विरह गाथा में वसुदेव को लिखती है कि उसे न तो मायका छोड़ने का दुःख है और न ही विद्या सिद्ध न होने का, उसके लिए सबसे बड़ा दुःख वसुदेव के अलग होने का है।<sup>५८</sup> सोमश्री मानसवेग के प्रमदवन में ऐसी लग रही थी जैसे रावण की अशोक वाटिका में सीता। उसका मुख म्लान हो गया था, आँखें आँसुओं से भरी थीं। आभूषणों से रहित मैले-कुचैले वस्त्र पहने हुए धूम अग्नि की तरह राहु के मुख से निकलती हुई चन्द्रिका की तरह चोटी केशसज्जा रहित, एक ही चोटी वाली, सूखे हुए शरीर वाली तपस्विनी लग रही थी।<sup>५९</sup> विरह पीड़ित सुन्दरी स्नान, विलेपन, अंजन आदि शृंगार नहीं करती थी, उसकी आँखें आँसुओं से भरी रहती थीं, उसे दुःखी देखकर अंतःपुर के लोग भी दुःखी रहते थे।<sup>६०</sup> रुक्मिणी के पुत्र के अपहरण हो जाने पर रुक्मिणी का मूर्च्छित हो जाना, स्वस्थ हो जाने पर पुत्र-शोक में विलाप करना कि मेरी निधि नष्ट हो गई, मुझ अभागिन के नवोदित बालचन्द्र को राहु ने ग्रस लिया, मैंने कौन सा अपराध किया था, अब मैं अन्धकारपूर्ण दिशाओं में कहाँ ढूँँ अपने पुत्र को।<sup>६१</sup> करुण रस की अभिव्यक्ति करता है। अपनी निर्दोष पत्नी को मृत्युदण्ड देने वाला राजा दुःख से अभिभूत हो गया। अपनी प्रिया के वियोग में उसने मृत्यु का वरण करने की ठान ली। उसने अपने लिए चिता बनवाई, पुरोहित को बुलवा लिया।<sup>६२</sup> मानसवेग ने जब वसुदेव का कटा हुआ सिर प्रभावती की गोद में डाल दिया और उसे कहा कि वसुदेव मर चुका है, अतः तुम मेरी पत्नी बन जाओ तो प्रभावती ने उसे फटकारते हुये कहा — ऐसी बात कहते हुए तुम्हारे जिह्वा क्यों नहीं कट गई, तुम्हारी पत्नी बनने से पहले मैं मृत्यु का वरण कर लूँगी। वह वसुदेव का सिर गोद में रखकर विलाप करने लगी, अपना शरीर पटकती हुई रोने पीटने लगी। मेरे नाथ, प्रिय ! बड़ी-बड़ी आँखों वाले सुवदन मैं पुण्यहीन तुम्हारे बगैर कैसे रहूँगी। आज जो मेरे पति के जीवित होने का सन्देश लायेगा, उसकी मैं आजन्म दासी

बन जाऊँगी। इस प्रकार तरह-तरह से विलाप करने लगी।<sup>१३</sup> जंगल में नल के द्वारा छोड़ी गई दमयन्ती अपने आपको अकेला और निःसहाय पाकर तरह-तरह से विलाप करने लगी, 'स्वामी, तुम तो क्षण भर के लिये भी मुझे अकेली नहीं छोड़ते थे, अब जंगली जानवरों और चोर-लुटेरों के बीच अकेली छोड़कर क्यों चले गये। उपहास छोड़ो सामने आ जाओ, मुझ अभागिन को मेरा स्वामी दे दो। इस प्रकार उसका करुण क्रन्दन सभी दिशाओं में फैल गया।<sup>१४</sup> पति के मुख से दूसरी स्त्री का नाम सुनकर स्त्रियाँ ईर्ष्या से जलभुन जाती थीं। धम्मिल के मुख से गणिका का नाम सुनकर विमलसेना का व्यवहार रौद्ररस की अनुभूति करवाता है। वह ईर्ष्या से अभिभूत हो गई, क्रोध से दंत किटकिटाने लगी, दंताग्र से हल्के-हल्के होंठ काटने लगी, ललाट पर भृकुटि तन गई, आँखों में आँसू आ गये, कण्ठ अवरुद्ध हो गया, अव्यक्त शब्दों में कुछ भुनभुना रही थी, क्रोध से उसका सिर हिल रहा था, जूड़ा बिखर गया था, फूल नीचे गिर गये थे, खिसका हुआ रक्तांशुक करधनी की डोरी से आ लगा था। धम्मिल पर चरण प्रहार करते हुए कहने लगी 'अब वसन्तसेना ही तुम्हें बतायेगी'<sup>१५</sup> वसुदेव के वैडूर्यमाला के साथ रत्नजड़ित पात्रों में मदिरा पीते हुए देखकर अनिलयशा की दृष्टि विषनागकन्या की तरह क्रोधित हो गई। फटकारते हुए उसने वैडूर्यमाला को कहा, नीच तुमने कुल के अनुसार ही काम किया है।<sup>१६</sup>

आचार्य की कृति में कहीं हृदय को उन्मुक्त करने वाला विलास है तो कहीं अन्तरात्मा को बेसुध करने वाला सौन्दर्य और कहीं मानस तल को तरंगित करने वाली हास्य लहरी, नारियों का शृंगार विपर्यय हास्य रस की व्यंजना का हेतु बना गया है। वसुदेव के रूप-सौन्दर्य से मुग्ध नारियाँ पागलों की तरह सुधबुध खोकर उनके पीछे चल देती थीं, वह खिड़कियों और झरोखों पर वसुदेव के इंतजार में मूर्ति बन कर बैठी रहती थीं, स्वप्न में भी वसुदेव का नाम बड़बड़ाती थीं, अगर बाजार में सब्जी भाजी भी लेने जातीं तो दुकानदार से सब्जी के बजाय वसुदेव का दाम पूछने लगतीं, रोते हुए बच्चों को संभालने के लिये कहते तो गाय के बछड़े को बाँधने लगतीं, घर के कामकाज छोड़ देतीं, पूजा की थाली भी नहीं सजातीं।<sup>१७</sup> सत्यभामा का नाई रुक्मिणी के केश-मुंडन के लिए आया था। ब्राह्मण वेषधारी कुमार प्रद्युम्न ने नापितों से पूछा, आप लोग बदर मुण्डन जानते हैं। नापितों के इंकार करने पर कुमार ने उन्हें बदर मुण्डन सिखाने के लिये नापितों के सिर से चमड़ा सहित बाल छील कर उसके हाथ में पकड़ा दिये। जब यादव वृद्ध केश लेने के लिये आये तो उसने अपनी विद्या के बल से जिन आसनों पर उनको बिठाया था उनके साथ चिपका दिया। जब वह जाने लगे तो चिपके हुए आसनों से लज्जित हो गये। उनके साथ आये हुए नापितों की भी ऐसी मति भ्रम कर दी कि वह आपस में ही एक दूसरे के बाल काटने लगे। उन्होंने किसी का चिरिका मुण्डन कर दिया, किसी का आधा सिर मूड़ दिया, किसी की आधी दाढ़ी मूछी। इस प्रकार सब दासियों के उपहास का पात्र बने लौट गये।<sup>१८</sup>

परनारी को पाने हेतु षड्यन्त्र रचने वाले पुरोहित को सबक सिखाने के लिये पुष्पदेव ने उसकी समूची देह पर मोम लगा कर उस पर रूई चिपका दी और अनेक पंख लगाकर उसे पक्षी का रूप देकर राजा के सामने प्रस्तुत किया। उसके शरीर में लोहा चुभा दिया ( किं जल्पं किं जल्पं ) क्या बोलूँ, वह इस प्रकार बोलने लगा। राजा के सामने उसका भेद खुला तो वह सारी सभा का उपहास-पात्र बन गया।<sup>५९</sup>

वीररस की अभिव्यंजना के लिये तदनुकूल ध्वनिसूचक शब्दों से वैसा वातावरण पैदा किया गया है। युद्ध का वर्णन करते हुये वीररस का प्रभावशाली प्रतिपादन किया गया है। मेरा बहुबल ही मेरा परिचय देगा इस प्रकार गर्वित वचन बोलता हुआ वसुदेव युद्ध के लिये तैयार हो गया। विविध आयुधों से भरे तथा फहराती हुई ध्वजाओं वाले रथ दौड़ने लगे, शंख फूके जाने लगे, हाथी एक दूसरे से टकराने लगे, घोड़ों के भागने से उठती हुई धुंध आखों में पड़ने लगी। कुछ योद्धाओं द्वारा छोड़े गये बाणों से सूर्य की रश्मियाँ आच्छादित हो गईं, वसुदेव अकेला ही बहुतों के सामने डटा रहा, धनुष से छूटते हुए बाणों को वसुदेव अपने बाणों से काट रहा था। किसी का मुकुट ही कट गया, किसी का रथ छिन्न-भिन्न हो गया, किसी के अस्त्र-शस्त्र कट गये। मैं तुम्हारा विनाश करता हूँ, क्षणभर ठहरो, इस प्रकार बोलते हुए योद्धाओं की अहंकारयुक्त आवाजें गूँजने लगीं। जो पीठ दिखायेगा मार दिया जायेगा, इस प्रकार की चेतावनी देकर सेना को युद्ध से पीछे हटने के लिये हतोत्साहित किया जा रहा था। लड़ने वालों को प्रीतिपूर्वक उत्साहित किया जा रहा था। स्वामी की ललकार से सैनिक दुगुने उत्साह से लड़ने लगते थे। त्रिपृष्ठ की वज्रपात के समान ध्वनि को सुनकर कुछ काम रूप विद्याधर चिल्लाते हुए भाग गये, कुछ कायर पकड़े गये, कुछ के शस्त्र गिर गये, कुछ परकटे पक्षी की भाँति धरती पर लुढ़क गये। इस प्रकार शारदीय जल की भाँति अपनी सेना को आनन्दित कर दिया। त्रिपृष्ठ की सेना विजयश्री की ओर बढ़ने लगी। सिंह को छोड़कर खरगोश की तरह क्यों छिपे हो, यदि राज्य प्राप्ति की इच्छा है तो एक रथ पर अकेले मेरे से युद्ध करो, मेरी शरण में आ जाओ, इस प्रकार की गर्वोक्तियों से एक दूसरे को उत्तेजित करते हुए चक्र से शत्रु का सिर कट जाने पर विद्याधर डर से भागने लगे। त्रिपृष्ठ ने हारे सैनिकों को आश्वासन दिया, अभय दान दिया, यथोचित सम्मान करते हुए कहा कि मेरी भुजाओं में रक्षित आप अपने-अपने राज्यों में सुखपूर्वक रहें।<sup>६०</sup> युद्ध की समाप्ति अनेक विवाहों में परिणित होती है, चूँकि विवाह युद्ध के परिणामस्वरूप हैं इस प्रकार वीर रस को शृंगार की अपेक्षा अधिक महत्त्व दिया गया है।

भूतों राक्षसों के उल्लेख, बलि के लिए वसुदेव को देवी शंकुका के पास ले जाना, वध की तैयारियाँ करना, ऋषिदत्ता को वध के लिये करवीर की माला पहना कर घुमाना, प्रद्युम्न द्वारा भानु के विवाह की तैयारियों में विकृतियाँ उत्पन्न करना आदि प्रसंग वीभत्स रस की योजना करते हैं।

शृंगार रस हो या वीर, साहित्यकारों ने अंतिम चरण वैराग्य में ही मोड़ा है। अधिकांश पात्र जीवन के उपभोगों को भोग कर अन्त में संसार से विरक्त हो जैनधर्म में दीक्षित हो मुनि जीवन बिताते हुए दिखाई देते हैं। इस प्रकार शृंगार और वीर रस का शान्तरस में ही पर्यवसान दिखाई देता है। स्थान-स्थान पर मुनियों द्वारा उपदेश दिलवाकर जैनदर्शन के कर्म सिद्धान्त को उभारा गया है। जैन महापुरुषों के जीवन चरित्रों में श्रान्तरस का बड़ा सुष्ठु परिपाक हुआ है। अनेक ऐसे पद्य हैं जिनमें मानव जीवन के निर्माण में सहायक तथा जन जीवन को प्रेरणा प्रदान करने वाले सुन्दर उपदेश निबद्ध हैं।

घटनाओं का तारतम्य जहाँ हर्ष, करुणा, आश्चर्य, भय, हास्यादि समाविष्ट है वहाँ उत्सुकता और आश्चर्य को भी उत्तेजित करता है। कौतुहल की योजना करके कथासूत्र को आगे बढ़ाया है। भारण्ड पक्षी जब चारुदत्त को ऊपर से बहुत बड़े हृद में गिरा देता है, जरासंध के रक्षक पुरुष वसुदेव को चमड़े की बोथड़ी में बन्द करके पर्वत से गिरा देते हैं, स्वर्णसिद्धि करने वाला परिव्राजक चारुदत्त को अंधेरे कुँए में छोड़ कर चला आता है तो पाठक सोचने लग जाता है कि अब क्या होगा ? नायक-नायिका का अकस्मात् अपहरण हो जाना, विद्याधरों द्वारा वसुदेव को साँकलों में बाँध कर शंकुका देवी के पास बलि के लिये ले जाना, वसुदेव का किसी स्त्री के साथ मद्य पीते देखकर रानी का क्रोधित हो जाना, राजा का वसुदेव को मृत्युदंड दे देना, हाथी के मुख से कन्या का निकलना, नदी के भँवर में डूबती हुई कन्या के साथ वसुदेव का भी फँस जाना, निर्दोष ऋषिदत्ता का झूठे अपराध में फँस जाना, मृत्यु दंड प्राप्त ऋषिदत्ता को वधिकों द्वारा नगर में घुमाते हुए ले जाना आदि अनेक ऐसे प्रसंग कौतुहल को उत्पन्न करते हैं। पर उत्सुकता और कौतुहल को कम करने वाले भी कई प्रसंग हैं, यथा कौन स्त्री किसको वरण करेगी, यह पहले से ही निश्चित है जिसकी सूचना ज्योतिषी या चारण मुनि पहले ही दे देते हैं जिसके लिये उसी व्यक्ति को ढूँढने का प्रयत्न भी किया जाता है जो नियतिवाद का पोषण करता है। भवितव्यता के आगे मानव घुटने टेक देता है। उसके अपने परिश्रम, इच्छा-अनिच्छा का कोई मूल्य ही नहीं रहता। कहानी की उत्सुकता और कौतुहल भी कुछ सीमा तक समाप्त हो जाता है। विद्याधर द्वारा अपनी विद्याओं का समय-समय पर प्रयोग करके स्वाभाविकता का पुट देने का प्रयास किया है, मौत के मुँह में पहुँचे हुए वसुदेव को बचाने के लिये प्रभावती का धरण का रूप धर के मूर्ति में से निकालना और वसुदेव को लेकर उड़ जाना, उसी प्रकार अनिलयशा का देवी शंकुका की मूर्ति से निकल कर वसुदेव को लेकर सिद्धायतन कूट पर चले जाना, जगह-जगह पर विद्याधरों द्वारा रूप परिवर्तन कर लेना, मनुष्य के हाथ पैर काट कर उसको मृतक दिखा देना, किसी दूसरे व्यक्ति का रूप बना लेना आदि कई चमत्कार के प्रसंगों ने कथाओं में अलौकिक तत्त्व की वृद्धि की है।

### पात्र चित्रण

आचार्य संघदासगणि ने मानव स्वभाव का विविध और विस्तृत विश्लेषण किया

है। उनके पात्र बड़े सजीव और सहज हैं। एक ओर सामन्ती परम्परा के रागरंग में डूबे राजा, सामन्त, व्यवहारपटु सार्थवाह, नायक नायिकाओं, दैवीय विद्याओं से युक्त विद्याधरों के चरित्र हैं तो दूसरी ओर चौर्य कर्म में निपुण चोर, ठग, धूर्त, कपटी ब्राह्मण, व्यभिचारिणी स्त्रियाँ तथा हृदयहीन गणिकाओं के भी चरित्र हैं।

वसुदेव धीरोदत्त, गुणविशिष्ट, परम पुरुषार्थी, तेजस्वी, विलासी, माधुर्यसम्पन्न, गम्भीर, ललित गुणों से समाविष्ट, सौम्याकार, बहुपत्नीक नायक है। बड़े भाई द्वारा नगरोद्यान में जाने के प्रतिबन्ध से उनका स्वाभिमानी मन आहत हो जाता है। वह घर छोड़ कर चल देता है। वह इतना रूपवान है कि उसे देखते ही नगर की स्त्रियाँ सुधबुध खो बैठती हैं। जहाँ भी वह जाता है नारियाँ स्वतः ही उसकी ओर आकृष्ट होती हैं। लोग उसे साक्षात् कामदेव और चित्रकला का प्रतिरूप कहते हैं। भीषण युद्धों में उसके शौर्य का परिचय मिलता है, वह अकेले ही कई-कई राजाओं, सामन्तों से लौहा ले लेता है, मस्त हाथियों को वश में करना उसके बायें हाथ का खेल है, क्रूर राक्षसों विद्याधरों को भी अपनी वीरता से पछाड़ देता है, उसकी वीरता से प्रभावित होकर राजा उससे मित्रता करने के इच्छुक हो जाते हैं, अपनी कन्यायें दे देते हैं। कन्यायें भी उसकी वीरता से आकर्षित होकर विवाह करने के लिए उत्सुक हो जाती हैं। मुश्किल में पड़े हुए प्राणियों को बचाना वह अपना प्रथम कर्तव्य समझता है। ललित कलाओं का प्रेमी और वेदों का ज्ञाता है, संगीत प्रतियोगिताओं, शास्त्रार्थों में विजयी होने वाला वह अनेक कन्याओं का भी दिल जीतता है। वह विनम्र और गुरुजनों का सम्मान करने वाला है। वह व्यवहार कुशल भी है, गुरु तक पहुँचने के लिये गुरुपत्नी को आभूषणों का लोभ देकर अपना मार्ग बनाता है।

उसकी श्रृंगारप्रियता का नमूना तो पूरी कोटि में ही है। वह सौन्दर्य प्रेमी रसिक नायक है। जहाँ उसे सुन्दर कन्या मिलती है उसे प्राप्त करने के लिये वह लालायित हो जाता है। प्रेमी हृदय वसुदेव रसलोलुप या कोरा कामी नहीं है, वह नैतिकता का सम्मान करने वाला है। कौमुदी उत्सव के उत्तेजक वातावरण में कामशर से पीड़ित प्रभावती के समागम की इच्छा वाला वह प्रभावती के इंकार करने पर आगे नहीं बढ़ता। इसी प्रकार विवाह की इच्छा से कनकवती के स्वयंवर में जाने पर भी कुबेर की प्रार्थना पर अपनी मनमानी न कर कनकवती को कुबेर से विवाह करने के लिये प्रेरित करता है। प्रेम के प्रसंग में ज्ञानवोचित दुर्बलताओं ने उसके चरित्र को स्वाभाविक बना दिया है। प्रिया के न दिखने पर व्याकुल हो जाता है, व्याकुलता से सन्देश भेजता है, खाना-पीना सब भूल जाता है। दयालु इतना है कि दूसरों को बचाने के लिये अपनी जान खतरे में डाल देता है। दानी भी है, जुए में जीता हुआ एक करोड़ का धन गरीब निसहाय लोगों में बाँट देता है। धर्म प्रेमी भी है, जहाँ भी सिद्धायतन देखता है भक्तिपूर्वक जिन भगवान की पूजा-अर्चना करता है। सार्थवाह अगड़दत्त सर्व कला से पूर्ण है, कुछ विद्याओं में बड़ा निपुण है, गुरुजनों का आदर मान करने वाला है, सच्चा प्रेमी है, प्रेमिका को मरा जान कर



मूर्च्छित हो जाता है, प्रिया के विश्वासघात से उसके कोमल हृदय को चोट लगती है, सब कुछ त्याग कर वह जैन श्रमण बन जाता है। समाज में सम्भवतः वैश्य वर्ग का स्थान ऊँचा उठाने के लिये धम्मिल चरित्र को उभारा हो गया है। वह सार्थवाह होकर भी राजसी टाट-बाट से रहता है, अनेकों कन्याओं से विवाह रचाता है, वह क्षत्रियों की तरह वीरता का प्रदर्शन करता है, इहलौकिक कर्तव्यों को निभाता हुआ निःश्रेयस की प्राप्ति के लिये श्रमणत्व अंगीकार कर लेता है। नारी के हृदय के चित्रों का रूप रंग भली-भाँति निखारा गया है। नारी का माधुर्य, शोभा, लज्जा, ईर्ष्या, गाढ़ानुराग, मनोवैज्ञानिक और स्वाभाविक है। वह दयालु, नीतिज्ञ, वक्ता, चतुर और विदुषी है। स्फटिक के समान स्वच्छ हृदय वाली और शील के आभूषणों वाली नारियों के भी उल्लेख हुए हैं। सोमश्री, प्रभावती, गन्धर्वदत्ता, अनिलयशा, धनश्री रूप लावण्य आदि नारी के समस्त गुणों से भूषित आदर्श नायिकायें हैं जिन्होंने अपनी कष्ट-सहिष्णुता, मर्यादा, शील एवं धैर्य से पत्नी की गरिमा को उजागर किया है। सपत्नी सुलभ ईर्ष्या के साथ-साथ स्त्री सुलभ दया का भी चित्रण हुआ है। पात्रों में स्वभावानुकूल उनके जीवन का विकास दीखता है।

सोमश्री वेदवेदांगों को जानने वाली अनन्य रूपवती है। पति की अनुपस्थिति में वह तपस्विनी सा जीवन बिताती है। पति को कष्ट में जानकर शत्रु से पति के जीवन की भीख माँगती है, वैवाहिक जीवन में खलल डालने वाले के लिये उसके अंगों से बहता खून देखने की प्रतिज्ञा करती है। प्रभावती सुन्दरता की प्रतिमूर्ति है, उसका सौन्दर्य विद्युत् सा था। उसे देखते ही वसुदेव को तिलोत्तमा, रम्भा, उर्वशी और चित्रा का शक होने लगता है। वह उच्च चरित्र वाली है, अपनी सखी से विश्वासघात नहीं करना चाहती, नैतिक नियमों का पालन करने वाली है, गुरुजनों के द्वारा विधिवत विवाह संस्कार में दिये जाने के बिना वह वसुदेव से यौन सम्बन्ध करने से इंकार कर देती है। वह दयालु है, सोमश्री को दुःखी देखकर उसकी सहायता के लिये तत्पर हो जाती है, वह वसुदेव को उसके पास लेकर आती है, उसके लिये आमोद-प्रमोद के सब साधन जुटाती है। वसुदेव पर विपत्ति आई जान अपनी विद्याओं और जान की भी परवाह न कर वह वसुदेव को बचाती है। पति से सच्चा प्यार करने वाली है, वसुदेव का कटा सिर देखकर हृदयविदारक विलाप करती है। पति के कुशल क्षेम का समाचार देने वाले की दासी बनने के लिये तैयार हो जाती है। पतिव्रत धर्म में सराबोर अनिलयशा को अपनी विद्याओं के भ्रष्ट होने का भी दुःख नहीं था, पति को जीवित रखने के लिये वह फल-फूल खाकर तपस्विनी का जीवन जीने में भी सुख मानती है। वसुदेव को अपने पिता की कैद से छुड़ाने के लिये वह छल-कपट का भी सहारा ले लेती है। उसमें उच्चकुल में पैदा होने का अभिमान भी है। वह अपने से छोटे कुल की मातंग कन्या से विद्यायें नहीं सीखना चाहती। नारी सुलभ ईर्ष्या भी है उसमें, वसुदेव को वैडूर्यमाला के साथ मद्य पीते हुये देखकर नागकन्या की तरह फुंफकारने लगती है। सपत्नियों के आपसी हास-विलास, नारीसुलभ ईर्ष्या के अनेक उदाहरण मिलते

हैं। प्रियंगुसुन्दरी सौतेतों के घर से आये दूत का नाम सुनकर जलभुन जाती है पर अपनी भावना को छुपाकर पारिवारिक सुख-शान्ति को बनाये रखने के लिये सौतेतों को घर में बुलाती है, उनका स्वागत सत्कार करती है। वेगवती अपने प्रिय पुरुष को पाने के लिए उचित-अनुचित को भूलकर दूसरी स्त्री का वेष धारण करके छलपूर्वक अपने प्रिय को प्राप्त करती है।

नारी के चरित्र का उल्लेख करते हुए कहा गया है कि गंगा के बालुकणों, समुद्र की लहरों तथा हिमालय की ऊँचाई को नापना आसान है, लेकिन नारी के हृदय की थाह लेना कठिन है। स्त्रियों को अज्ञानियों के लिये ग्राह्य और ज्ञानियों के लिये त्याज्य कहा है। भार्या चरित्र के शील परीक्षण की दृष्टि से यह कृति अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इसमें नारी चरित्र के अनेक पहलू हैं। एक ओर शील की अवहेलना करने वाली नारी का चरित्र है तो दूसरी में पर-पुरुष से विद्वेष रखने वाली नारी की वीरता का दिग्दर्शन होता है जो १२ वर्ष तक कठिन परीक्षायेँ देकर अपने सतीत्व की रक्षा करती है।

नारियों के चरित्र में आई स्वच्छन्दता का भी खुलकर चित्रण किया गया है। पर-पुरुष की इच्छा वाली स्त्रियाँ किस प्रकार दासियों, परिचारिकाओं की सहायता से पर-पुरुष समागम का साहस कर लेती थीं, वर्णन किया गया है।

आचार्य ने गणिका जैसे चरित्र को भी अपने चातुर्य से सम्मानजनक स्थान दिया है। अपना शरीर बेचने वाली स्त्रियाँ भी कुलीन नारियों की तरह जीवन बिताती दीखती हैं। धर्म के प्रति भी उनकी अटूट आस्था है।

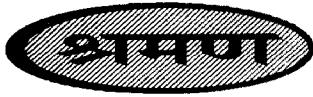
### सन्दर्भ

१. वसुदेवहिंडी, पृ० २५३
२. वही, पृ० ७४४
३. वही, पृ० ५५८
४. वही, मध्यम खंड, पृ० ५१
५. वही, पृ० ९८८
६. वही, पृ० ९४२
७. वही, पृ० ९३४
८. वही, पृ० ९३८
९. वही, मध्यम खंड, पृ० ५२
१०. वसुदेवहिंडी, पृ० ११५१
११. वही, पृ० ११४६
१२. वही, पृ० ३९६
१३. वही, पृ० ९१७

१४. वही, पृ० ७३५, पृ० ७४६
१५. वही, पृ० ४६५-४६९
१६. वही, पृ० ५८६-५९५
१७. वही, मध्यम खंड, २३३-२५७
१८. वसुदेवहिंडी, पृ० ४०
२०. वही, पृ० २३-२५
२१. वही, पृ० २०-२१
२२. वही, पृ० ५१६-५१७
२३. वही, पृ० २४७
२४. वही, मध्यम खंड, पृ० ६, पृ० ७०
२५. वसुदेवहिंडी, पृ० ४७८
२६. वही, पृ० ४७८
२७. वही, पृ० १०६४, पृ० ५४२
२८. वही, पृ० २२२
२९. वही, पृ० ५४०
३०. वही, पृ० २२३
३१. वही, पृ० २२७
३२. वही, पृ० ४०२
३३. वही, मध्यम खंड, पृ० ४०
३४. वही, मध्यम खंड, पृ० २९, वसुदेव हिंडी, पृ० ४११
३५. वही, मध्यम खंड, पृ० १९३
३६. वही, पृ० ६२३
३७. वही, पृ० १२२
३८. वही, पृ० २९३
३९. वही, पृ० १८३, पृ० ११५
४०. वही, पृ० ३०३, पृ० ३०९-३११
४१. वही, पृ० ३०५
४२. वही, पृ० ७०२
४३. वही, मध्यम खंड, पृ० ४२-४५
४४. वही, मध्यम खंड, पृ० ४५
४५. वसुदेवहिंडी, पृ० १११९
४६. वही, पृ० ६९९
४७. वही, पृ० २०४
४८. वही मध्यम खंड, पृ० ६

४९. वही, मध्यम खंड, पृ० ५१
५०. वही, मध्यम खंड, पृ० १७७
५१. वसुदेवहिंडी, पृ० २४०
५२. वही, मध्यम खंड, पृ० १४१
५३. वही, मध्यम खंड, पृ० ७७-७८
५४. वही, मध्यम खंड, पृ० २३७
५५. वही, पृ० १८४
५६. वही, मध्यम खंड, पृ० १७०
५७. वसुदेवहिंडी, पृ० ३६२
५८. वही, पृ० २८१-२८३
५९. वही, पृ० ९२९
६०. वही, पृ० ११३७, पृ० ६४२, पृ० ७५१, पृ० ६७५-६७७





## हर्षपुरीयगच्छ अपरनाम मलधारीगच्छ का संक्षिप्त इतिहास

शिव प्रसाद

निर्ग्रन्थ परम्परा के श्वेताम्बर सम्प्रदाय में पूर्वमध्यकालीन सुविहितमार्गीय गच्छों में हर्षपुरीयगच्छ अपरनाम मलधारीगच्छ का विशिष्ट स्थान है। जैसा कि इसके नाम से ही विदित होता है यह गच्छ राजस्थान में हर्षपुर नामक स्थान से उद्भूत हुआ माना जाता है। प्रस्तुत गच्छ की गुर्वावली में जयसिंहसूरि का नाम इस गच्छ के आदिम आचार्य के रूप में मिलता है। उनके शिष्य अभयदेवसूरि हुए जिन्हें चौलुक्य नरेश कर्ण (वि० सं० ११२०-११५०/ईस्वी सन् १०६४-१०९४) से मलधारी विरुद प्राप्त हुआ था। बाद में यही विरुद इस गच्छ के एक नाम के रूप में प्रचलित हो गया। कर्ण का उत्तराधिकारी जयसिंह सिद्धराज (वि० सं० ११५०-११९९/ईस्वी १०९४-११४३) भी इनका बड़ा सम्मान करता था। इन्हीं के उपदेश से शाकम्भरो के चाहमान नरेश पृथ्वीराज 'प्रथम' ने रणथम्भौर के जैन मन्दिर पर स्वर्णकलश चढ़ाया था। गोपगिरि (ग्वालियर) के राजा भुवनपाल (विक्रम सम्वत् की १२वीं शती का छठौं दशक) और सौराष्ट्र का राजा राखेगार पर भी इनका प्रभाव था। अभयदेवसूरि के शिष्य, विभिन्न ग्रन्थों के रचनाकार प्रसिद्ध विद्वान् आचार्य हेमचन्द्रसूरि हुए। अपनी कृतियों की अन्त्यप्रशस्ति में इन्होंने स्वयं को प्रश्नवाहनकुल, मध्यमिका शाखा और हर्षपुरीयगच्छ के मुनि के रूप में बतलाया है। कल्पसूत्र की 'स्थविरावली' में भी प्रश्नवाहनकुल और मध्यमिका शाखा का उल्लेख प्राप्त होता है। इनके शिष्य परिवार में विजयसिंहसूरि, श्रीचन्द्रसूरि, विबुधचन्द्रसूरि, लक्ष्मणगणि और आगे चल कर मुनिचन्द्रसूरि, देवभद्रसूरि, देवप्रभसूरि, यशोभद्रसूरि, नरचन्द्रसूरि, नरेन्द्र-प्रभसूरि, पद्मप्रभसूरि, श्रीतिलकसूरि, राजशेखरसूरि, वाचनाचार्य सुधाकलश आदि कई विद्वान् आचार्य एवं मुनि हुए हैं।

इस गच्छ के इतिहास के अध्ययन के लिए साहित्यिक और अभिलेखीय दोनों प्रकार के साक्ष्य उपलब्ध हैं। साहित्यिक साक्ष्यों के अन्तर्गत इस गच्छ के मुनिजनों द्वारा बड़ी संख्या में रची गयी कृतियों की प्रशस्तियाँ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। इसके अतिरिक्त इस गच्छ की एक पट्टावली भी मिलती है, जो सदगुरुपद्धति के नाम से जानी जाती है। इस गच्छ के मुनिजनों द्वारा वि० सं० ११९० से वि० सं० १६९९ तक प्रतिष्ठापित १०० से अधिक सलेख जिन प्रतिमाएँ मिलती हैं। साम्प्रत लेख में उक्त सभी साक्ष्यों के आधार पर

इस गच्छ के इतिहास पर प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है।

### अनुयोगद्वारवृत्ति

संस्कृत भाषा में ५९०० श्लोकों में निबद्ध यह कृति मलधारी हेमचन्द्रसूरि की रचना है। इसकी प्रशस्ति<sup>१</sup> में उन्होंने अपनी गुरु-परम्परा का उल्लेख किया है, जो इस प्रकार है :

जयसिंहसूरि

अभयदेवसूरि

हेमचन्द्रसूरि (अनुयोगद्वारवृत्ति के रचनाकार)

हेमचन्द्रसूरि विरचित विशेषावश्यकभाष्यबृहद्वृत्ति के अन्त में भी यही प्रशस्ति मिलती है। उनके द्वारा रचित आवश्यकप्रदेशव्याख्यावृत्ति, आवश्यकटिप्पण, शतकविवरण, उपदेशमालावृत्ति आदि रचनायें मिलती हैं, जिनके बारे में आगे यथास्थान विवरण दिया गया है।

### धर्मोपदेशमालावृत्ति

मलधारी हेमचन्द्रसूरि के शिष्य विजयसिंहसूरि ने वि० सं० ११९१/ई० सन् ११३५ में उक्त कृति की रचना की। इसकी प्रशस्ति<sup>२</sup> में वृत्तिकार ने अपनी गुरु-परम्परा का उल्लेख किया है, जो इस प्रकार है :

जयसिंहसूरि

अभयदेवसूरि

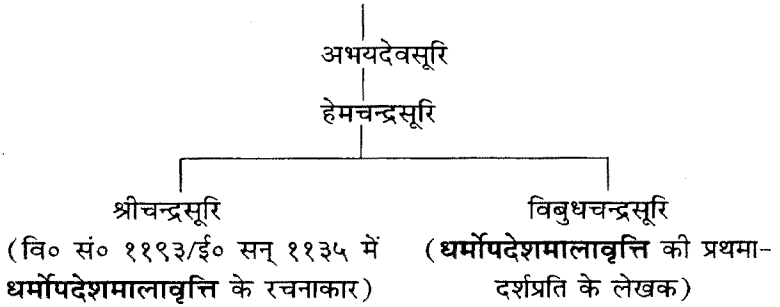
हेमचन्द्रसूरि

विजयसिंहसूरि (वि० सं० ११९१ ई०/सन् ११३५ में धर्मोपदेशमालावृत्ति के रचनाकार)

### मुनिसुव्रतचरित

यह प्राकृतभाषा में इस तीर्थङ्कर के जीवन पर लिखी गयी एकमात्र कृति है जो मलधारी गच्छ के प्रसिद्ध आचार्य श्रीचन्द्रसूरि द्वारा वि० सं० ११९३/ई० सन् ११३७ में रची गयी है। इसकी प्रथमादर्श प्रति आचार्य के गुरुभ्राता विबुधचन्द्रसूरि द्वारा लिखी गयी। ग्रन्थ की प्रशस्ति<sup>३</sup> में ग्रन्थकार ने अपनी गुरु-परम्परा के साथ अपने गुरुभ्राता के इस सहयोग का भी उल्लेख किया है :

जयसिंहसूरि



### सुपासनाहचरिय

प्राकृत भाषा में ८००० गाथाओं में निबद्ध यह कृति वि० सं० ११९९/ई० सन् ११४३ में मलधारी लक्ष्मणगणि द्वारा रची गयी है। इसकी प्रशस्ति<sup>४</sup> में ग्रन्थकार ने अपनी गुरु-परम्परा का इस प्रकार उल्लेख किया है :

जयसिंहसूरि

अभयदेवसूरि

हेमचन्द्रसूरि

लक्ष्मणगणि (वि० सं० ११९९/ई० सन् ११४३ में  
सुपासनाहचरिय के रचनाकार)

### संग्रहणीवृत्ति

यह मलधारी श्रीचन्द्रसूरि के शिष्य देवभद्रसूरि की कृति है। इसकी प्रशस्ति<sup>४</sup> के अन्तर्गत ग्रन्थकार ने अपनी गुरु-परम्परा का उल्लेख किया है, जो इस प्रकार है :

अभयदेवसूरि

हेमचन्द्रसूरि

श्रीचन्द्रसूरि

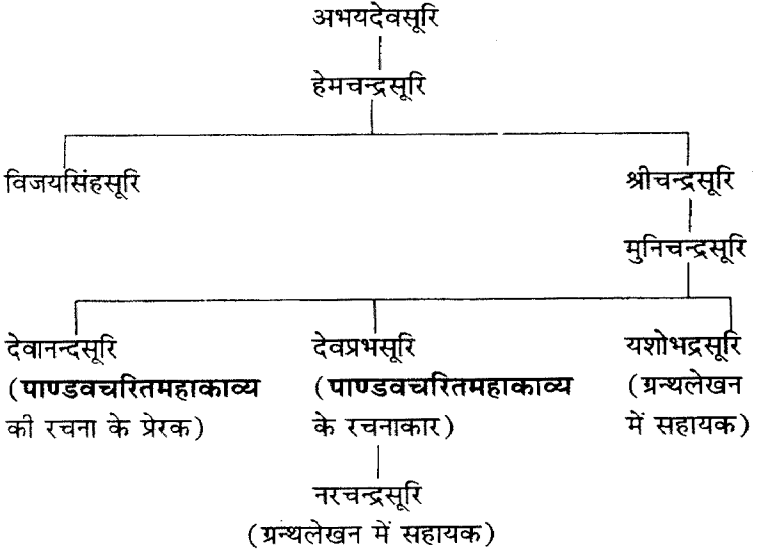
देवभद्रसूरि (संग्रहणीवृत्ति के रचनाकार)

यह कृति वि० सं० की १३वीं शती के प्रथम अथवा द्वितीय दशक की रचना मानी जा सकती है।

### पाण्डवचरितमहाकाव्य

यह लोकप्रसिद्ध पाण्डवों के जीवनचरित पर जैनपरम्परा पर आधारित ८ हजार श्लोकों की रचना है। इसके रचनाकार मलधारी देवप्रभसूरि हैं। ग्रन्थ की प्रशस्ति से ज्ञात

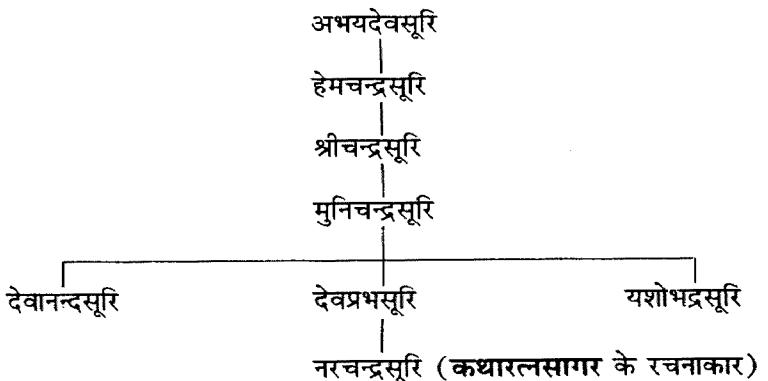
होता है कि ग्रन्थकार ने अपने ज्येष्ठ गुरुभ्राता देवानन्दसूरि के अनुरोध पर यह रचना की। इस कार्य में उन्हें अपने एक अन्य गुरुभ्राता यशोभद्रसूरि और शिष्य नरचन्द्रसूरि से भी सहायता प्राप्त हुई। प्रशस्ति<sup>६</sup> में उल्लिखित ग्रन्थकार की गुरु-परम्परा इस प्रकार है :



ग्रन्थकार ने ग्रन्थ की प्रशस्ति के अन्तर्गत रचनाकाल का उल्लेख नहीं किया है किन्तु श्री मोहनलाल दलीचंद देसाई ने उपलब्ध अन्य साक्ष्यों के आधार पर इसे वि० सं० १२७०/ई० सन् १२१४ के आस-पास रचित बतलाया है, जो उचित प्रतीत होता है।

### कथारत्नसागर

यह देवप्रभसूरि के शिष्य प्रसिद्ध ग्रन्थकार नरचन्द्रसूरि की रचना है। इसकी प्रशस्ति में ग्रन्थकार ने अपनी गुरु-परम्परा इस प्रकार दी है :

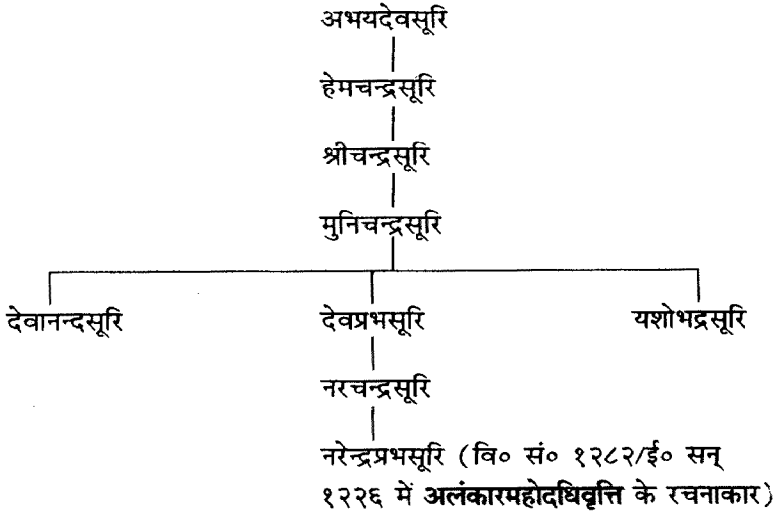




इसका एक नाम **कथारत्नाकर** भी मिलता है। जैनधर्म सम्बन्धी कथानक सुनने की महामात्य वस्तुपाल की उत्कण्ठा को शान्त करने के लिए नरचन्द्रसूरि ने इसकी रचना की। इस कृति की वि० सं० १३१९/ई० सन् १२५३ की लिखी गयी ताड़पत्र की एक प्रति पाटन के संघवीपाडा ग्रन्थ भण्डार में संरक्षित है। नरचन्द्रसूरि महामात्य वस्तुपाल के मातृपक्ष के गुरु थे। उनके द्वारा रचित **प्राकृतदीपिकाप्रबोध**, **अनर्घराघवटिप्पन**, **ज्योतिषसार** आदि कई अन्य कृतियाँ भी मिलती हैं। वस्तुपाल के गिरनार के दो लेखों के पद्यांश भी नरचन्द्रसूरि द्वारा रचित हैं और **वस्तुपालप्रशस्ति** भी इन्हीं की कृति है।

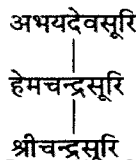
### अलंकारमहोदधि

महामात्य वस्तुपाल के अनुरोध एवं मलधारी आचार्य नरचन्द्रसूरि के आदेश से उनके शिष्य नरेन्द्रप्रभसूरि ने वि० सं० १२८० में **अलंकारमहोदधि** तथा वि० सं० १२८२/ई० सन् १२२६ में इस पर **वृत्ति** की रचना की। इसकी प्रशस्ति में उन्होंने अपनी गुरु-परम्परा का उल्लेख किया है, जो इस प्रकार है :



### न्यायकंदलीपंजिका

यह **हर्षपुरीयगच्छ** के प्रसिद्ध आचार्य राजशेखरसूरि द्वारा वि० सं० १३८५/ई० सन् १३२९ में रची गयी है। इसकी प्रशस्ति में उन्होंने लम्बी गुरु-परम्परा दी है, जो इस प्रकार है :



मुनिचन्द्रसूरि

देवप्रभसूरि

नरचन्द्रसूरि

पद्मदेवसूरि

श्रीतिलकसूरि

राजशेखरसूरि (वि० सं० १३८५/ई० सन्  
१३२९ में न्यायकंदलीपंजिका के रचनाकार)

### संगीतोपनिषत्सारोद्धार

यह मलधारिगच्छीय वाचनाचार्य सुधाकलश द्वारा वि० सं० १४०६/ई० सन् १३५० में रची गयी ६१० श्लोकों की रचना है। यह ६ अध्यायों में विभक्त है। इसकी प्रशस्ति में ग्रन्थकार ने अपनी लम्बी गुरु-परम्परा का परिचय न देते हुए अपने पूर्वज अभयदेवसूरि तथा उनकी परम्परा में हुए श्रीतिलकसूरि एवं उनके शिष्य राजशेखरसूरि का अपने गुरु के रूप में उल्लेख किया है :

मलधारी अभयदेवसूरि

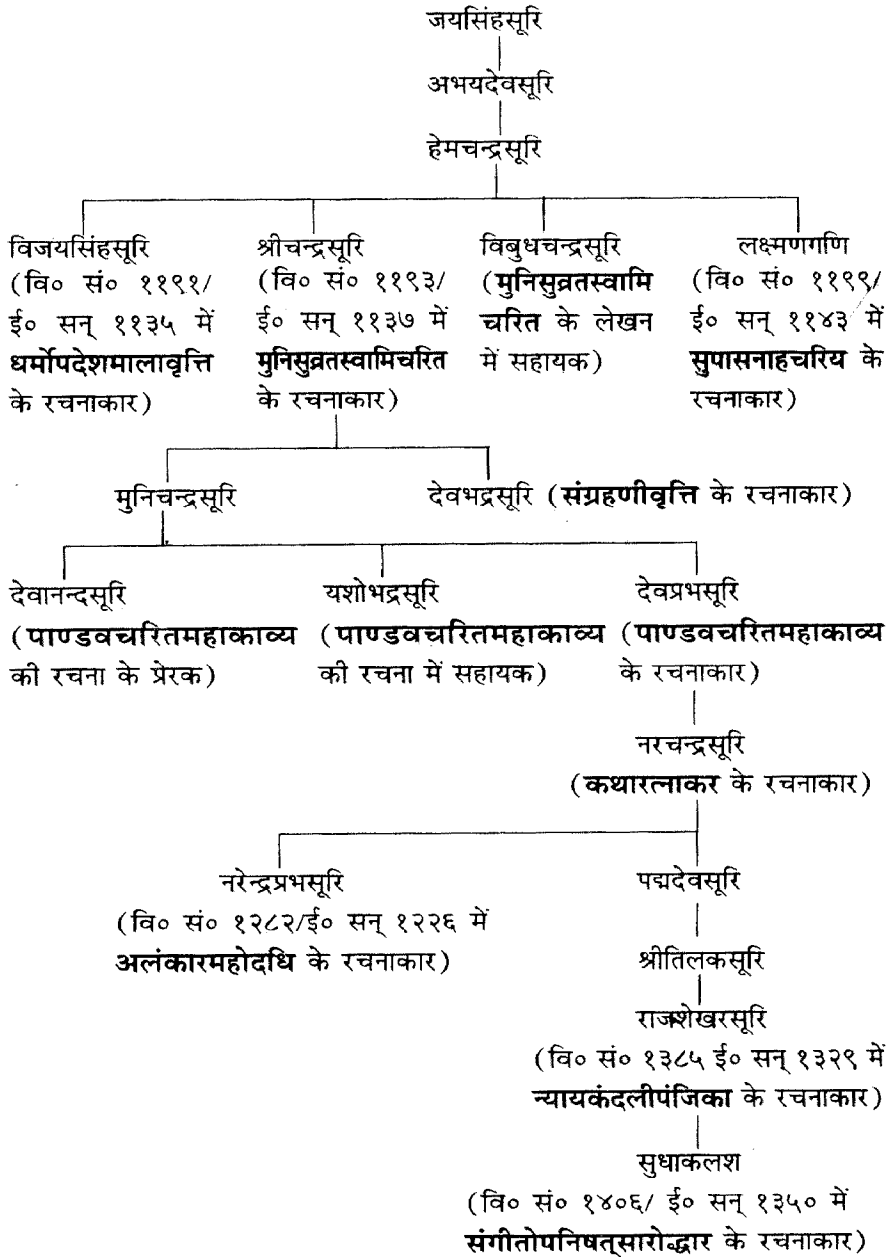
श्रीतिलकसूरि

राजशेखरसूरि

सुधाकलश (वि० सं० १४०६/ई० १३५० में  
संगीतोपनिषत्सारोद्धार के रचयिता)

उक्त साहित्यिक साक्ष्यों के आधार पर हर्षपुरीयगच्छ अपरनाम मलधारीगच्छ के मुनिजनों की गुरु-परम्परा की एक तालिका इस प्रकार निर्मित होती है (द्रष्टव्य तालिका क्रमाङ्क - १)।

तालिका क्रमांक - १



## हर्षपुरीयगच्छ अपरनाम मलधारी गच्छ के मुनिजनों द्वारा प्रतिष्ठापित तीर्थङ्कर प्रतिमाओं पर उत्कीर्ण लेखों का विवरण

इस गच्छ के मुनिजनों द्वारा प्रतिष्ठापित १०० से अधिक सलेख जिनप्रतिमाएँ प्राप्त हुई हैं, जो वि० सं० ११९०/ई० सन् ११३४ वि० सं० १६९९/ई० सन् १६४३ तक की हैं। इनका विवरण इस प्रकार है —

### क्रमांक तिथि / मिति प्रतिष्ठापक आचार्य या मुनि का नाम प्रतिमालेख/स्तम्भलेख प्राप्तिस्थान संदर्भग्रन्थ

१	२	३	४	५	६
१.	११९०	—	जिनप्रतिमा पर उत्कीर्ण खंडित लेख	—	एम० ए० ढांकी और लक्ष्मणभोजक “शत्रुजयगिरिना केटलाक अप्रकट प्रतिमालेखों” सम्बोधि, वर्ष ७, अंक १-४, पृष्ठ १३-२५, लेखाङ्क ५
२.	१२३४ .... वदि २	पूर्णचन्द्रसूरि	पार्श्वनाथ की प्रतिमा पर उत्कीर्ण लेख	चीराखाना स्थित जैनमन्दिर, दिल्ली	जैन लेख संग्रह, भाग-२, लेखाङ्क १८७५
३.	१२५९ वैशाख सुदि ३ बुधवार	देवाणदसूरि	पार्श्वनाथ की प्रतिमा पर उत्कीर्ण लेख	धर्मनाथ का पंचायती मन्दिर, बड़ा बाजार, कलकत्ता	वहीं, भाग १, लेखाङ्क ८९
४.	१२८८ फाल्गुन सुदि १० बुधवार	नरचन्द्रसूरि	स्तम्भलेख	वस्तुपाल द्वारा निर्मित आदिनाथ जिनालय, गिरनार	प्राचीन जैन लेख संग्रह, भाग-२, लेखाङ्क ३९
५.	१२८८ फाल्गुन सुदि १०	नरचन्द्रसूरि	स्तम्भलेख	”	वहीं, लेखाङ्क ४०

१	२	३	४	५	६
६.	१२८८ फाल्गुन सुदि १० बुधवार	१० नरेन्द्रप्रभसूरि	—	वस्तुपाल तेजपाल द्वारा निर्मित प्रासाद, गिरनार	मुनि जिनविजय, पूर्वोक्त, लेखाङ्क ४१
७.	१२९८ फाल्गुन वदि १४ रविवार	नरचन्द्रसूरि के शिष्य माणिक्य- चन्द्रसूरि	—	—	U.P. Shah, "A Forgotten Chapter in the History of Shvetambara Jaina Church "Journal of Asiatic Society of Bombay, Vol. 30, Part I, 1955 A. D. pp. 100-113.
८.	१३२१ फाल्गुन सुदि १२ शनिवार	प्रभागंदसूरि	नेमिनाथ की प्रतिमा पर उत्कीर्ण लेख	गुढमण्डप, लूणवसही, आबू	मुनि जयन्तविजय — अर्बुदप्राचीन जैन लेख संदीह, आबू, भाग २, लेखाङ्क २५३
९.	१३३७ वैशाख सुदि ३ शनिवार	प्रभागंदसूरि	महावीरस्वामी की प्रतिमा पर उत्कीर्ण लेख	चन्द्रप्रभजिनालय जैसलमेर	पूरनचन्द नाहर, जैन लेख संग्रह, भाग ३, लेखाङ्क २२३१
१०.	१३४४ ज्येष्ठ वदि ४ शुक्रवार	रत्नदेवसूरि	पार्श्वनाथ की प्रतिमा पर उत्कीर्ण लेख	महावीर जिनालय, डीसा	वहीं, भाग २, लेखाङ्क २०९९
११.	१३५२ वैशाख वदि ५ सोमवार	पद्मदेवसूरि के शिष्य श्रीतिलकसूरि	श्रीतलनाथ	मनमोहनपार्श्वनाथ जिनालय, मीयागाम	मुनिबुद्धिसागर — सम्पादक जैन धातु प्रतिमा लेख संग्रह, भाग-२, लेखाङ्क २७९

१२.	१३७१ माघ सुदि १४ सोमवार	श्रीतिलकसूरि	शांतिनाथ	सुमतिनाथ मुख्य - बावन जिनालय, मातर	वहीं, भाग-२, लेखाङ्क ५१९
१३.	१३७५ ..... सुदि ९	श्रीतिलकसूरि	शीतलनाथ	मुनिसुव्रत जिनालय, खारवाडो, खंभात	वहीं, भाग-२, लेखाङ्क १०२८
१४.	१३७८ मितिविहीन	श्रीतिलकसूरि	मुनिसुव्रत	देवकुलिका	मुनि जिनविजय, पूर्वोक्त, भाग-२, लेखांक १४४
१५.	१३७८ मितिविहीन	श्रीतिलकसूरि	महावीर	विमलवसही, आबू	वहीं, लेखाङ्क १४५
१६.	१३७८ मितिविहीन	पद्मदेवसूरि के	—	प्रेमचन्द्रमोदी की	पूरनचन्द नाहर, पूर्वोक्त, भाग-१, लेखाङ्क ६८४
१७.	१३८० वैशाख वदि ५	शिष्य श्रीतिलकसूरि	पार्श्वनाथ की धातु की	टोंक, शत्रुञ्जय	मुनि विशालविजय, संपा० राधनपुर
१८.	गुरुवार १३८० माघ सुदि ६	शिष्य श्रीतिलकसूरि	प्रतिमा का लेख	राधनपुर	प्रतिमा लेख संग्रह, लेखाङ्क ४९
१९.	सोमवार १३८६ माघ वदि २	पद्मदेवसूरि के	चन्द्रप्रभ की प्रतिमा पर	महावीर जिनालय, बीकानेर	अगरचन्द नाहटा, संपा० बीकानेर जैन लेख संग्रह, लेखाङ्क १२१४
२०.	१३९३ पौष वदि ५	शिष्य श्रीतिलकसूरि के	उत्कीर्ण लेख	चिन्तामणि पार्श्वनाथ जिनालय, बीकानेर	वहीं, लेखाङ्क ३१३
२१.	१३९३ फाल्गुन सुदि ३	राजशेखरसूरि	पार्श्वनाथ की धातु- प्रतिमा का लेख	जैन मन्दिर, वढवाण	विजयधर्मसूरि, संपा० प्राचीनलेख संग्रह, लेखाङ्क ६२
		राजशेखरसूरि	पार्श्वनाथ की प्रतिमा का लेख	चिन्तामणि पार्श्वनाथ जिनालय, बीकानेर	नाहटा, पूर्वोक्त, लेखाङ्क ३५८

१	२	३	४	५	६
२२.	१४०८ वैशाख सुदि ५ गुरुवार	उदयदेवसूरि	आदिनाथ की प्रतिमा का लेख	शांतिनाथ देरासर, शांतिनाथ पोल, अहमदाबाद	बुद्धिसागर - पूर्वोक्त, भाग-१, लेखाङ्क १२५६
२३.	१४०९ फाल्गुनवदि २	राजशेखरसूरि	आदिनाथ की प्रतिमा का लेख	आदिनाथ जिनालय (नाहटों में) बीकानेर	नाहटा, पूर्वोक्त, लेखाङ्क १४४२
२४.	१४१५ ज्येष्ठ वदि १३	राजशेखरसूरि	तीर्थङ्कर प्रतिमा पर उत्कीर्ण लेख	चिन्तामणि जिनालय, बीकानेर	वहीं, लेखाङ्क ४३५
२५.	१४२७ ज्येष्ठ वदि १	मुनिशेखरसूरि	चन्द्रप्रभ की धातु प्रतिमा का लेख	गौड़ीजी भण्डार, उदयपुर	विजयधर्मसूरि, पूर्वोक्त, लेखाङ्क ७८
२६.	१४४० वैशाख सुदि ३	राजशेखरसूरि	शांतिनाथ की प्रतिमा का लेख	शांतिनाथ जिनालय कोट, मुम्बई	मुनिकान्तिसागर, संपा० जैनधातु प्रतिमालेख, लेखाङ्क ५०
२७.	१४५४ पौष सुदि १२ सोमवार	मुनिसागरसूरि	वासुपुज्य की प्रतिमा का लेख	बालावसही, शत्रुञ्जय	मुनि कान्तिसागर, संपा० शत्रुञ्जय वैभव, लेखाङ्क ४९
२८.	१४५८ वैशाख वदि २ बुधवार	मत्तिसागरसूरि	आदिनाथ की पञ्चतीर्थी प्रतिमा का लेख	पार्श्वनाथ जिनालय, बूंदी	विनयसागर, संपा० प्रतिष्ठालेखसंग्रह, लेखाङ्क १८१
२९.	१४५८ ज्येष्ठ सुदि १० शुक्रवार	मत्तिसागरसूरि	नमिनाथ की प्रतिमा का लेख	वीर जिनालय, बीकानेर	नाहटा, पूर्वोक्त, लेखाङ्क १२७८
३०.	१४७९ माघ वदि ४ शुक्रवार	विद्यासागरसूरि	शांतिनाथ की प्रतिमा का लेख	वीरजिनालय, बीकानेर	वहीं, लेखाङ्क १३००.

१	२	३	४	५	६
३१.	१४७६ चैत्र वदि १ शनिवार	विद्यासागरसूरि	आदिनाथ की प्रतिमा का लेख	महावीर जिनालय डीसा	पूरनचन्द नाहर, पूर्वोक्त, भाग-२ लेखाङ्क २१००
३२.	१४७७ ज्येष्ठ वदि १	मुनिशेखरसूरि	चन्द्रप्रथ की प्रतिमा का लेख	गौड़ीपार्श्वनाथ जिनालय, रङ्गपुर, उत्तरी बंगाल	वही, भाग-२, लेखाङ्क ११२५
३३.	१४७९ माघ सुदि ४ शनिवार	मतिसागरसूरि	आदिनाथ की प्रतिमा का लेख	भण्डारस्थ प्रतिमा, शातिनाथ जिनालय, नाकोड़ा	मुनि कान्तिसागर, जैनधामप्रतिमा लेख, लेखाङ्क १६
३४.	१४८३ वैशाख सुदि ५ गुरुवार	विद्यासागरसूरि	आदिनाथ की पंचतीर्थी प्रतिमा का लेख	चिन्तामणि पार्श्वनाथ जिनालय, किशनगढ़	विनयसागर, पूर्वोक्त, लेखाङ्क २३९
३५.	१४८३ भाद्रपद वदि ७ गुरुवार	मतिसागरसूरि के पट्टधर विद्यासागरसूरि	देवकुलिका का लेख	जैन मन्दिर, थराद	दौलतसिंह लोढा, संपा० श्रीप्रतिमा लेखसंग्रह, लेखाङ्क २९२ ब
३६.	१४८४ वैशाख सुदि ३ शनिवार	विद्यासागरसूरि	कुन्थुनाथ की पंचतीर्थी प्रतिमा का लेख	माणिकसागरजी का मन्दिर, कोटा	विनयसागर, पूर्वोक्त, लेखाङ्क २४८
३७.	१४८५ आषाढ़ सुदि १० रविवार	विद्यासागरसूरि	पार्श्वनाथ की प्रतिमा का लेख	पठानी टोला स्थित जैन मंदिर, वाराणसी	नाहर, पूर्वोक्त भाग-१, लेखाङ्क ४०६
३८.	१४८७ मार्गसिर सुदि ५	विद्यासागरसूरि	अरनाथ की पंचतीर्थी प्रतिमा का लेख	मुनिसुव्रत जिनालय, मालपुरा	विनयसागर, पूर्वोक्त, लेखाङ्क २६७
३९.	१४८८ मार्गसिर सुदि १२ गुरुवार	विद्यासागरसूरि	आदिनाथ की प्रतिमा का लेख	चिन्तामणि पार्श्वनाथ जिनालय, बीकानेर	नाहटा, पूर्वोक्त लेखाङ्क, ७३८



१	२	३	४	५	६
४०.	१४९७ ज्येष्ठ सुदि २	गुणसुन्दरसूरि	आदिनाथ की प्रतिमा का लेख	चन्द्रप्रथ जिनालय, जैसलमेर	नाहर, पूर्वोक्त भाग-३, लेखाङ्क २३१२
४१.	१४९८ ज्येष्ठ सुदि २	गुणसुन्दरसूरि	धर्मनाथ की प्रतिमा का लेख	चिन्तामणि पार्श्वनाथ जिनालय, बीकानेर	नाहटा, पूर्वोक्त, लेखाङ्क ८००
४२.	१४९८ फाल्गुन सुदि १०	गुणसुन्दरसूरि	आदिनाथ की प्रतिमा का लेख	चिन्तामणि पार्श्वनाथ जिनालय, बीकानेर	वहीं, लेखाङ्क ८०६
४३.	१४९९ माघ वदि ५ रविवार	विद्यासागरसूरि के पट्टधर गुणसुन्दरसूरि	धर्मनाथ की प्रतिमा का लेख	—	शत्रुञ्जयवैभव, लेखाङ्क ८३
४४.	१४९९ माघ सुदि ६	गुणसुन्दरसूरि	श्रयांसनाथ की पंचतीर्थी प्रतिमा का लेख	बड़ा मंदिर, नागौर	विनयसागर, पूर्वोक्त, लेखाङ्क ३३९
४५.	१४९९ फाल्गुन वदि ४ शनिवार	गुणसुन्दरसूरि	धर्मनाथ की पंचतीर्थी प्रतिमा का लेख	खरतरगच्छीय आदि-नाथ जिनालय, कोटा	वहीं, लेखाङ्क ३३४
४६.	१५०२ वैशाख सुदि २ सोमवार	गुणकीर्तिसूरि लक्ष्मीसागरसूरि	आदिनाथ की पंचतीर्थी प्रतिमा का लेख	जैनमंदिर, मेड़ता सिटी	विनयसागर, पूर्वोक्त, लेखाङ्क ३५७
४७.	१५०४ फाल्गुन सुदि ११	विद्यासागरसूरि के पट्टधर गुणसुन्दरसूरि	कुन्धुनाथ की पंचतीर्थी प्रतिमा का लेख	माणिकसागरजी का मंदिर, कोटा (राज०)	वहीं, लेखाङ्क ३८४
४८.	१५०४ फाल्गुन सुदि ११	विद्यासागरसूरि के पट्टधर गुणसुन्दरसूरि	कुन्धुनाथ की पंचतीर्थी प्रतिमा का लेख	चिन्तामणि पार्श्वनाथ जिनालय, बीकानेर	नाहटा, पूर्वोक्त, लेखाङ्क ८८७

४९. १५०५ माघ सुदि १० विद्यासागरसूरि के सुविधिनाथ की चौबीसी शांतिनाथ देरासर, बुद्धिसागर, पूर्वोक्त भाग-१, रविवार पट्टर गुणसुन्दरसूरि प्रतिमा का लेख शांतिनाथ पोल, अहमदाबाद लेखाङ्क १३१३
५०. १५०६ माघ सुदि ८ विद्यासागरसूरि के सुविधिनाथ की चौबीसी अजितनाथ जिनालय, वहीं, भाग १, लेखाङ्क १००९ पट्टर गुणसुन्दरसूरि प्रतिमा का लेख शेखनो पाडो, अहमदाबाद
५१. १५०८ चैत्र सुदि ९ गुणसुन्दरसूरि सुमतिनाथ की प्रतिमा का लेख आदिनाथ जिनालय, वहीं, भाग-२, लेखाङ्क १९९ माणोक चौक, खंभात
५२. १५०८ वैशाख सुदि ५ गुणसुन्दरसूरि अजितनाथ की प्रतिमा का लेख सुमतिनाथ मुख्य- बावन जिनालय, मातर वहीं, भाग-२, लेखाङ्क ४७२
५३. १५०८ ज्येष्ठ सुदि १३ गुणसुन्दरसूरि सुमतिनाथ की धातु की पंचतीर्थी प्रतिमा का लेख धर्मनाथ जिनालय, मुनि जयन्तविजय, आबू, भाग-५, बुधवार पंचतीर्थी प्रतिमा का लेख मडार लेखाङ्क ८२
५४. १५०८ आषाढ सुदि २ गुणसुन्दरसूरि वासपूज्य की प्रतिमा का लेख दादा पार्श्वनाथ बुद्धिसागर, पूर्वोक्त, भाग-२, लेखाङ्क सोमवार जिनालय, बडोदरा १२६
५५. १५०८ मार्गसिर वदि २ गुणसुन्दरसूरि संभवाथ की धातु की पंचतीर्थी प्रतिमा का लेख नेमिनाथ जिनालय, मुनि विशालविजय, पूर्वोक्त, लेखाङ्क राधनपुर १५५
५६. १५०९ वैशाख सुदि ११ गुणसुन्दरसूरि शीतलनाथ की प्रतिमा का लेख जैन मंदिर, चालीस मुनि कान्तिसागर, जैनघातुप्रतिमा शुकुवार गाँव, महाराष्ट्र लेख, लेखाङ्क १२०

१	२	३	४	५	६
५७.	१५०९ माघ सुदि १०	गुणसुन्दरसूरि	पद्मप्रभ की पंचतीर्थी प्रतिमा का लेख	खरतरगच्छीय आदि-नाथ जिनालय, कोटा	विनयसागर, पूर्वोक्त, लेखाङ्क ४४६
५८.	१५०९ माघ सुदि १०	विद्यासागरसूरि के पट्टधर गुणसुन्दरसूरि के विद्यासागरसूरि के	शांतिनाथ की पंचतीर्थी प्रतिमा का लेख	पंचायती जैनमंदिर, जयपुर	वहीं, लेखाङ्क ४४७
५९.	१५१० पौष वदि १०	विद्यासागरसूरि के पट्टधर गुणसुन्दरसूरि के	सुमतिनाथ की प्रतिमा का लेख	आदिनाथ जिनालय, देलवाड़ा, मेवाड़	नाहर, पूर्वोक्त, भाग-२, लेखाङ्क ११९०
६०.	१५११ आषाढ़ वदि ९	विद्यासागरसूरि के पट्टधर गुणसुन्दरसूरि के	आदिनाथ की पंचतीर्थी प्रतिमा का लेख	आदिनाथ जिनालय, करमदी	विनयसागर, पूर्वोक्त, लेखाङ्क ४७३
६१.	१५११ माघ सुदि ५ गुरुवार	विद्यासागरसूरि के पट्टधर गुणसुन्दरसूरि के	आदिनाथ की पंचतीर्थी प्रतिमा का लेख	चित्तामणि पार्श्वनाथ-जिनालय, जीरारपाडो, खंभात	बुद्धिसागर, पूर्वोक्त, भाग-२, लेखाङ्क ७२०
६२.	१५१२ मार्गसिर वदि १२	विद्यासागरसूरि के पट्टधर गुणसुन्दरसूरि के	कुन्धुनाथ की पंचतीर्थी प्रतिमा का लेख	आदिनाथ जिनालय, वींबडोद	विनयसागर, पूर्वोक्त, लेखाङ्क ४८५
६३.	१५१२ फाल्गुन सुदि १२ बुधवार	विद्यासागरसूरि के पट्टधर गुणसुन्दरसूरि के	सुमतिनाथ की प्रतिमा का लेख	जैन मंदिर, अलवर	नाहर, पूर्वोक्त, भाग-१, लेखाङ्क ९९१
६४.	१५१२ फाल्गुन सुदि... शनिवार	विद्यासागरसूरि के पट्टधर गुणसुन्दरसूरि के	कुन्धुनाथ की चौबीसी प्रतिमा का लेख	सुमतिनाथ जिनालय, घोघा (काठियावाड़)	वहीं, भाग २, लेखाङ्क १७७५
६५.	१५१३ चैत्र सुदि ६ गुरुवार	गुणसुन्दरसूरि के	पार्श्वनाथ की पंचतीर्थी प्रतिमा का लेख	विमलनाथ जिनालय, सवाई माधोपुर	विनयसागर, पूर्वोक्त, लेखाङ्क ५००

१	२	३	४	५	६
६६.	१५१३ वैशाख सुदि २-	गुणसुन्दरसूरि	आदिनाथ की पंचतीर्थी प्रतिमा का लेख	महावीर जिनालय, भिनाय	वहीं, लेखाङ्क ५०४
६७.	१५१३ आश्विन २	गुणसुन्दरसूरि	शांतिनाथ की पंचतीर्थी प्रतिमा का लेख	महावीर जिनालय, सांगनेर	वहीं, लेखाङ्क ५१६
६८.	१५१५ माघ सुदि १	गुणसुन्दरसूरि	वासुपूज्य की धातु की पंचतीर्थी प्रतिमा का लेख	महावीर जिनालय, राधनपुर	मुनि विशालविजय पूर्वोक्त, लेखाङ्क १८९
६९.	१५१५ फाल्गुन सुदि ४	श्रीसूरि	धर्मनाथ की प्रतिमा का लेख	सुपार्श्वनाथ का पंचायती मंदिर, जयपुर	नाहर, पूर्वोक्त, भाग-२, लेखाङ्क ११५४
७०.	१५१५ फाल्गुन वदि ४	गुणसुन्दरसूरि	धर्मनाथ की पंचतीर्थी प्रतिमा का लेख	चन्द्रप्रभ जिनालय, आमेर	विनयसागर, पूर्वोक्त, लेखाङ्क ५४८
७१.	१५१६ वैशाख सुदि १३	गुणसुन्दरसूरि	चन्द्रप्रभ की पंचतीर्थी प्रतिमा का लेख	महावीर जिनालय, सांगनेर	वहीं, लेखाङ्क ५५६
७२.	१५१७ वैशाख सुदि ३	गुणसुन्दरसूरि	शीतलनाथ की प्रतिमा का लेख	बालावसही, शत्रुञ्जय	शत्रुञ्जयवैभव, लेखाङ्क १५९ अ
७३.	१५१७ फाल्गुन सुदि ३	विद्यासागरसूरि के पट्टधर गुणसुन्दरसूरि	सुविधिनाथ की चौबीसी प्रतिमा का लेख	शांतिनाथ जिनालय, शांतिनाथ पोल, अहमदाबाद	मुनि बुद्धिसागर, पूर्वोक्त, भाग-१, लेखाङ्क १३१४
७४.	१५१५ ज्येष्ठ सुदि ५	हेमप्रभसूरि	शांतिनाथ की प्रतिमा का लेख	अजितनाथ जिनालय, शेखनो पाडो, अहमदाबाद	वहीं, भाग-१, लेखाङ्क १००१

६

५

४

३

२

१

७५.	१५१८ मार्गसिर वदि ५ शनिवार	गुणसुन्दरसूरि	श्रेयांसनाथ की पंचतीर्थी प्रतिमा का लेख	लीलाधरजी का उपाश्रय, जयपुर	विनयसागर, पूर्वोक्त, लेखाङ्क ५८०
७६.	१५१८ फाल्गुन वदि १ सोमवार	गुणसुन्दरसूरि	नमिनाथ की चौबीसी प्रतिमा का लेख	नवखण्डा पार्श्वनाथ जिनालय, भोंयरापाडो, खंभात	बुद्धिसागर, पूर्वोक्त, भाग २, लेखाङ्क ८६३
७७.	१५२० चैत्र वदि ८ शुक्रवार	गुणसुन्दरसूरि	सुमतिनाथ की धातु की पंचतीर्थी प्रतिमा का लेख	अजितनाथ जिनालय, राधनपुर	मुनि विशालविजय, पूर्वोक्त, लेखाङ्क २२७ एवं मुनि विजयधर्मसूरि, पूर्वोक्त, लेखाङ्क ३४७
७८.	१५२१ माघ वदि ९ सोमवार	गुणसुन्दरसूरि	धर्मनाथ की प्रतिमा का लेख	वीर जिनालय, खारवाड़ो, खंभात	बुद्धिसागर, पूर्वोक्त, भाग २, लेखाङ्क १०३०
७९.	१५२१ माघ सुदि १३ गुरुवार	गुणसुन्दरसूरि	अभिनन्दनस्वामी की प्रतिमा का लेख	अजितनाथ जिनालय, शेखनो पाडो, अहमदाबाद	वहीं, भाग-१, लेखाङ्क १०१३
८०.	१५२२ कार्तिक वदि ५ गुरुवार	गुणसुन्दरसूरि	आदिनाथ की प्रतिमा का लेख	वीर जिनालय, डीसा	नाहर, पूर्वोक्त, भाग-२, लेखाङ्क २१०४
८१.	१५२२ पौष वदि १ गुरुवार	भट्टारक गुण- सुन्दरसूरि	चन्द्रप्रभ की प्रतिमा का लेख	लोढण पार्श्वनाथ- देरासर, डभोई	बुद्धिसागर, पूर्वोक्त, भाग-१ लेखाङ्क ३९
८२.	१५२२ फाल्गुन सुदि ३ सोमवार	भट्टारक गुण- सुन्दरसूरि	चन्द्रप्रभस्वामी की पंचतीर्थी प्रतिमा का लेख	पंचायती मंदिर, जयपुर	विनयसागर, पूर्वोक्त, लेखाङ्क ६२३

८३.	१५२३ मार्गसिर वदि २ शुक्रवार	भट्टारक गुण- सुन्दरसूरि	कुन्धुनाथ की पंचतीर्थी प्रतिमा का लेख	पुंगलियों का मंदिर, जयपुर	वहीं, लेखाङ्क ६३०
८४.	१५२७ पौष सुदि ६ शुक्रवार	भट्टारक गुण- सुन्दरसूरि	सुविधिनाथ की पंचतीर्थी प्रतिमा का लेख	बड़ा मंदिर, नागौर	वहीं, लेखाङ्क ६९५ एवं नाहर, पूर्वोक्त, भाग २, लेखाङ्क १२७८
८५.	१५२८ वैशाख वदि ६	गुणसुन्दरसूरि	शातिनाथ की प्रतिमा का लेख	पार्श्वनाथ जिनालय, बीकानेर	अगरचन्द नाहटा, पूर्वोक्त, लेखाङ्क १९८३
८६.	१५२८ माघ सुदि ३ गुरुवार	गुणसुन्दरसूरि	सुमतिनाथ की पंचतीर्थी प्रतिमा का लेख	जैनमंदिर, भिनाथ	विनयसागर, पूर्वोक्त, लेखाङ्क ७१०
८७.	१५२९ वैशाख वदि ६	गुणसुन्दरसूरि	पद्मप्रभ की प्रतिमा का लेख	आदिनाथ जिनालय, राजलदेसर	अगरचन्द नाहटा, पूर्वोक्त, लेखाङ्क २३५१
८८.	तिथिविहीन	गुणसुन्दरसूरि	—	बालावसही, शत्रुञ्जय	शत्रुञ्जयवैभव, लेखाङ्क ८४
८९.	तिथिविहीन	गुणसुन्दरसूरि	—	बालावसही, शत्रुञ्जय	वहीं, लेखाङ्क १५९ ब
९०.	१५२९ फाल्गुन सुदि ७ बुधवार	गुणनिधानसूरि	सुविधिनाथ की प्रतिमा का लेख	कुन्धुनाथ जिनालय, छाणी	बुद्धिसागर, पूर्वोक्त, भाग-२, लेखाङ्क २६६
९१.	१५३२ वैशाख सुदि १० शुक्रवार	पुण्यनिधानसूरि	सुविधिनाथ की प्रतिमा का लेख	आदिनाथ जिनालय, नागौर	नांहर, पूर्वोक्त, भाग-२, लेखाङ्क १२८५ एवं विनयसागर, पूर्वोक्त, लेखाङ्क ७४८
९२.	१५३३ चैत्र सुदि ४ शुक्रवार	गुणसुन्दरसूरि के पट्टधर गुणनिधानसूरि	अभिन्दस्वामी की पञ्चतीर्थी प्रतिमा का लेख	बड़ा मंदिर, नागौर	विनयसागर, पूर्वोक्त, लेखाङ्क ७५३

१	२	३	४	५	६
१३.	१५३३ मितिविहीन	गुणसुन्दरसूरि के	आदिनाथ की पंचतीर्थी	पार्श्वनाथ जिनालय, दाहोद	वहीं, लेखाङ्क ७६७
१४.	१५३४ आषाढ़ सुदि १	गुणसुन्दरसूरि के	अजितनाथ की प्रतिमा	चिन्तामणि पार्श्वनाथ जिनालय, बीकानेर	नाहटा, पूर्वोक्त, लेखाङ्क १०८३
१५.	गुरुवार	पट्टधर गुणविधानसूरि के	का लेख	चिन्तामणि जिनालय, बीकानेर	वहीं, लेखाङ्क १०८४
१६.	१५३४ आषाढ़ सुदि १	गुणनिधानसूरि	शीतलनाथ की प्रतिमा का लेख	सवाईराम वाफणा का मंदिर, जैसलमेर	नाहर, पूर्वोक्त, भाग-३, लेखाङ्क २५२७
१७.	मंगलवार	गुणनिर्मलसूरि	आदिनाथ की प्रतिमा का लेख	शंखेश्वर पार्श्वनाथ जिनालय, आसानियों का चौक, बीकानेर	नाहटा, पूर्वोक्त, लेखाङ्क १९०८
१८.	१५३४ मार्गशीर्ष वदि ५	गुणनिधानसूरि	कुन्थुनाथ की प्रतिमा का लेख	शातिनाथ जिनालय, बुद्धिसागर, पूर्वोक्त, भाग-१, लिबंडीपाड़ा, पाटण	लेखाङ्क २९५
१९.	शुक्रवार	११ गुणविधानसूरि	चन्द्रप्रभस्वामी की प्रतिमा का लेख	विमलनाथ जिनालय, सवाईमाधोपुर, राजस्थान	विनयसागर, पूर्वोक्त, लेखाङ्क ८३६
१९.	१५४३ ज्येष्ठ वदि १	गुणनिधानसूरि के	संभवनाथ की पंचतीर्थी	शातिनाथ देरासर, बुद्धिसागर, पूर्वोक्त, भाग-१, लेखाङ्क १२९४	
१००.	गुरुवार	पट्टधर गुणसागरसूरि	प्रतिमा का लेख	शातिनाथ पोख, अहमदाबाद	
१००.	१५४६ आषाढ़ वदि २	श्री....सूरि	चन्द्रप्रभस्वामी की प्रतिमा का लेख		
	शनिवार				

१	२	३	४	५	६
१०१.	१५४६ आषाढ़ वदि १२ रविवार	गुणसागरसूरि	सुमतिनाथ की प्रतिमा का लेख	अन्तरिक्ष पार्श्वनाथ जिनालय, सिरपुर, अकोला (महाराष्ट्र)	कान्तिसागर, पूर्वोक्त, लेखाङ्क २४९
१०२.	१५४९ वैशाख, सुदि ५ रविवार	लक्ष्मीसागरसूरि	शांतिनाथ की प्रतिमा का लेख	शांतिनाथ जिनालय, लिंबडीपाडा, पाटण	बुद्धिसागर, पूर्वोक्त, भाग-१, लेखाङ्क २७९
१०३.	१५४९ ज्येष्ठ सुदि १३ रविवार	गुणकीर्तिसूरि	कुन्थुनाथ की प्रतिमा का लेख	रामचन्द्रजी का मंदिर, पठानीटोला, वाराणसी	पूरनचन्द नाहर, पूर्वोक्त, भाग-१
१०४.	१५५१ माघ वदि २ सोमवार	गुणकीर्तिसूरि	आदिनाथ की प्रतिमा का लेख	वीर जिनालय, बीकानेर	आगरचन्द नाहटा, पूर्वोक्त, लेखाङ्क १२७१
१०५.	१५५३ आषाढ़ सुदि २ रविवार	श्रीसूरि	पार्श्वनाथ की प्रतिमा का लेख	जैनमंदिर, चेलापुरी, दिल्ली	पूरनचन्द नाहर, पूर्वोक्त, भाग १, लेखाङ्क ४९४
१०६.	१५५३ आषाढ़ सुदि २ रविवार	श्रीसूरि	अजितनाथ की प्रतिमा का लेख	कुन्थुनाथ देरासर, बीजापुर	बुद्धिसागर, पूर्वोक्त, भाग-१, लेखाङ्क ४४१
१०७.	१५५४ पौष सुदि १२ सोमवार	मतिसागरसूरि	अदिनाथ की प्रतिमा का लेख	अनुपूर्ति लेख, आबू	मुनि जयन्तविजय, आबू, भाग-२, लेखाङ्क ६५९
१०८.	१५५७ वैशाख सुदि ५ गुरुवार	गुण....सूरि	धर्मनाथ की प्रतिमा का लेख	सुपार्श्वनाथ का पंचायती मंदिर, जयपुर	विनयसागर, पूर्वोक्त, लेखाङ्क ११६८
१०९.	१५५७ वैशाख सुदि ६ शुक्रवार	पुण्यवर्धनसूरि	धर्मनाथ की प्रतिमा का लेख	शांतिनाथ जिनालय, लिंबडीपाडा, पाटण	बुद्धिसागर, पूर्वोक्त, भाग-१, लेखाङ्क २९१



१	२	३	४	५	६
११०.	१५५८ फाल्गुन सुदि १२ शुकवार	लक्ष्मीसागरसूरि	सुमतिनाथ की प्रतिमा का लेख	जैन मंदिर, मोतिसुखिया की धर्मशाला, पालिताना	शत्रुञ्जयवैभव, लेखाङ्क २५७ एवं पूनचन्द नाहर, पूर्वोक्त, भाग-१ लेखाङ्क ६४८
१११.	१५६८ फाल्गुन सुदि ४ गुरुवार	लक्ष्मीसागरसूरि	मुनिसुव्रत की प्रतिमा का लेख	पार्श्वनाथ जिनालय, (कोचरो में) बीकानेर	नाहटा, पूर्वोक्त, लेखाङ्क १६०६
११२.	१५६९ मितिबिहीन	लक्ष्मीसागरसूरि	पार्श्वनाथ की प्रतिमा का लेख	गौड़ीपार्श्वनाथ जिनालय, रङ्गपुर, उत्तरी बंगाल	नाहर, पूर्वोक्त, भाग-२ लेखाङ्क ११३१
११३.	१५७२ वैशाख सुदि २ सोमवार	लक्ष्मीसागरसूरि	आदिनाथ की पंचतीर्थी प्रतिमा का लेख	धर्मनाथ जिनालय, मेड़ता सिटी	विनयसागर, पूर्वोक्त, लेखाङ्क १५०
११४.	१५७३ वैशाख सुदि ३ गुरुवार	लक्ष्मीसागरसूरि	शीतलनाथ की प्रतिमा का लेख	जैनमंदिर, ईडर	बुद्धिसागर, पूर्वोक्त, भाग-१ लेखाङ्क १४४२
११५.	१५८४ फाल्गुन सुदि १० गुरुवार	गुणसुन्दरसूरि	धर्मनाथ की पंचतीर्थी प्रतिमा का लेख	पार्श्वनाथ जिनालय, सांथा	विनयसागर, पूर्वोक्त, लेखाङ्क १७६
११६.	१६१९ मितिबिहीन	महिमासागरसूरि के पट्टधर कल्याण सागरसूरि	मूलनायक आदिनाथ की प्रतिमा पर उत्कीर्ण लेख	आदिनाथ जिनालय, उदयपुर	नाहर, पूर्वोक्त, भाग-२ लेखाङ्क १८९९

पद्मदेवसूरि के शिष्य राजशेखरसूरि द्वारा प्रतिष्ठापित ५ सलेख जिनप्रतिमायें मिलती हैं। इनका विवरण इस प्रकार है :

वि० सं० १३८६ माघ वदि २	बी० जै० ले० सं०, लेखांक ३१३
वि. सं० १३९३ पौष वदि २	प्रा० ले० सं०, लेखांक ६२
वि० सं० १३९३ फाल्गुन सुदि २	बी० जै० ले० सं०, लेखांक ३५८
वि० सं० १४०९ फाल्गुन वदि २	वहीं, लेखांक १४४२
वि० सं० १४१५ ज्येष्ठ वदि १३	वहीं, लेखांक ४४५

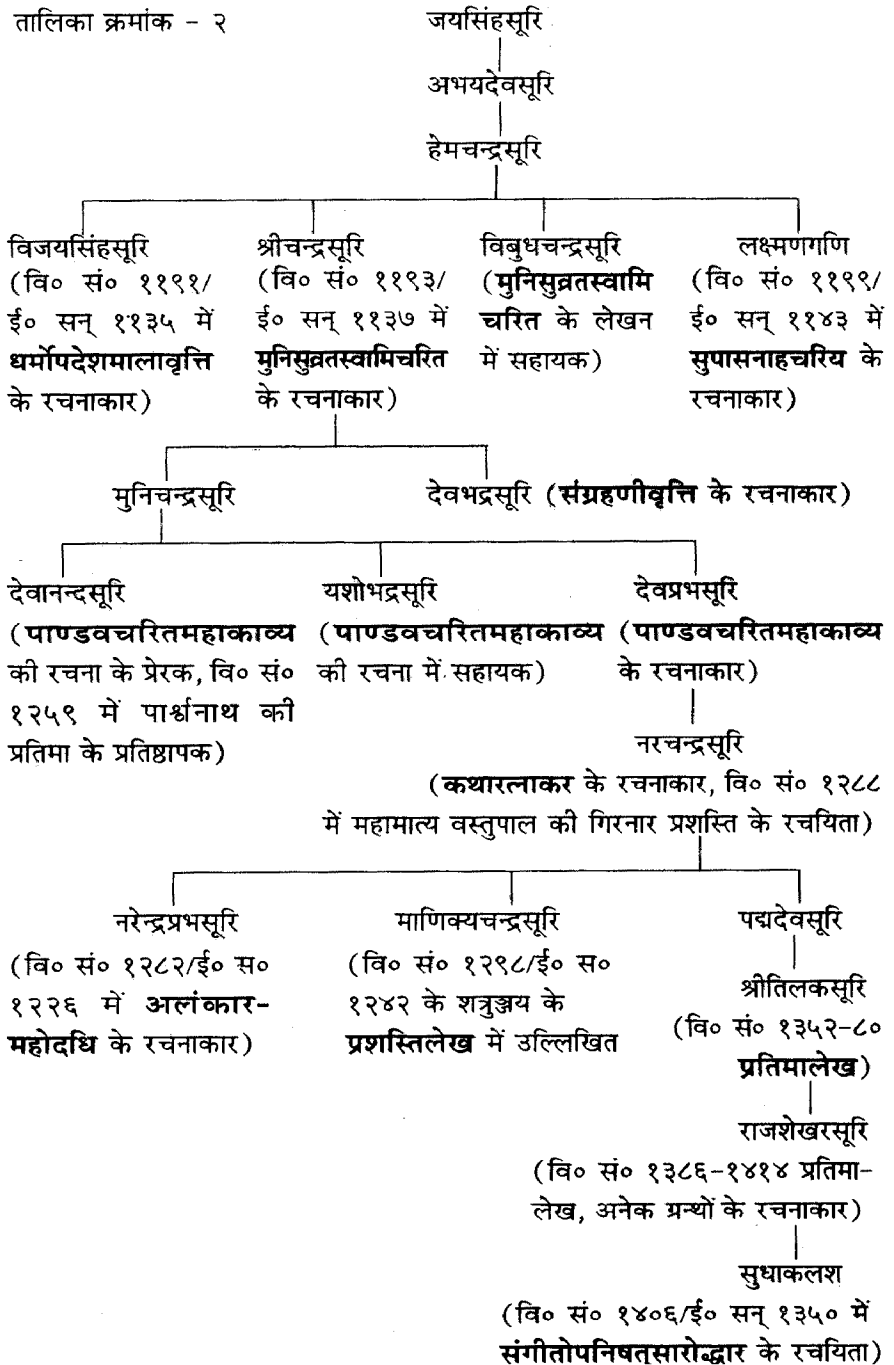
मलधारिगच्छीय प्रतिमा लेखों की सूची में वि० सं० १२५९ के प्रतिमालेख में प्रतिमा प्रतिष्ठापक मलधारी देवानन्दसूरि का नाम आ चुका है। जैसा कि प्रारम्भ में कहा जा चुका है मलधारी देवप्रभसूरि कृत पाण्डवचरित की प्रशस्ति<sup>११</sup> में भी ग्रन्थकार के ज्येष्ठ गुरुभ्राता और ग्रन्थ की रचना के प्रेरक के रूप में देवानन्दसूरि का नाम मिलता है। पाण्डवचरित का रचनाकाल वि० सं० १२७०/ई० सन् १२१४ माना जाता है।<sup>१२</sup> अतः समसामयिकता के आधार पर उक्त प्रशस्ति में उल्लिखित देवानन्दसूरि और वि० सं० १२५९/ई० सन् १२०३ में पार्श्वनाथ की प्रतिमा के प्रतिष्ठापक देवानन्दसूरि एक ही व्यक्ति माने जा सकते हैं।

महामात्य वस्तुपाल द्वारा निर्मित गिरनार स्थित आदिनाथ जिनालय के वि० सं० १२८८/ई० सन् १२३२ दो अभिलेखों के रचनाकार नरचन्द्रसूरि और यहीं स्थित इसी तिथि के एक अन्य अभिलेख के रचनाकार नरेन्द्रप्रभसूरि महामात्य वस्तुपाल के मातृपक्ष के गुरु नरचन्द्रसूरि<sup>१३</sup> और उनके शिष्य नरेन्द्रप्रभसूरि से अभिन्न हैं। यही बात वि० सं० १२९८/ई० सन् १२४२ के लेख में उल्लिखित माणिक्यचन्द्रसूरि के गुरु नरचन्द्रसूरि के बारे में भी कही जा सकती है।

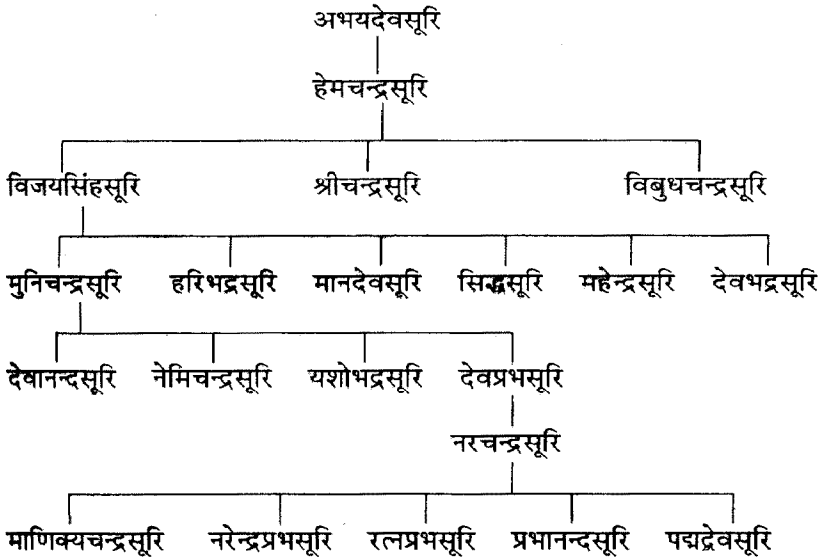
इसी प्रकार वि० सं० १३५२/ईस्वी सन् १२९६ से वि० सं० १३८०/ईस्वी सन् १३३४ तक के प्रतिमालेखों में उल्लिखित पद्मतिलकसूरि के शिष्य श्रीतिलकसूरि एवं वि० सं० १३६८/ई० सन् १३३० से वि० सं० १४१५/ई० सन् १३५९ तक के प्रतिमालेखों में उल्लिखित उनके शिष्य राजशेखरसूरि समसामयिकता के आधार पर मलधारिगच्छीय प्रसिद्ध आचार्य राजशेखरसूरि और उनके गुरु श्रीतिलकसूरि से अभिन्न माने जा सकते हैं।

उक्त अभिलेखीय साक्ष्यों के आधार पर मलधारिगच्छीय मुनिजनों की गुरु-परम्परा की पूर्वोक्त तालिका को जो वृद्धिगत स्वरूप प्राप्त होता है, वह इस प्रकार है (द्रष्टव्य — तालिका क्रमांक २) :

तालिका क्रमांक - २



जैसा कि प्रारम्भ में कहा गया है कि इस गच्छ की **सद्गुरुपद्धति** नामक एक गुर्वावली भी मिलती है। प्राकृत भाषा में २६ गाथाओं में रची गयी यह कृति वि० सं० की १४वीं शती की रचना मानी जा सकती है। इसमें अभयदेवसूरि से लेकर पद्मदेवसूरि तक के मुनिजनों की गुरु-परम्परा इस प्रकार दी गयी है :



ग्रन्थप्रशस्तियों से जहाँ श्रीचन्द्रसूरि के केवल दो शिष्यों — मुनिचन्द्रसूरि और देवभद्रसूरि के बारे में ही जानकारी प्राप्त हो पाती है, वहीं इस गुर्वावली से ज्ञात होता है कि उनके अतिरिक्त श्रीचन्द्रसूरि के हरिभद्रसूरि, सिद्धसूरि, मानदेवसूरि आदि शिष्य भी थे। यही बात मुनिचन्द्रसूरि के शिष्य नेमिचन्द्रसूरि के बारे में भी कही जा सकती है। इसी प्रकार इस गुर्वावली में उल्लिखित नरचन्द्रसूरि के सभी शिष्यों के नाम साहित्यिक और अभिलेखीय साक्ष्यों से ज्ञात हो जाते हैं। वस्तुतः इस गच्छ के इतिहास के अध्ययन की दृष्टि से यह गुर्वावली अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

जैसा कि पीछे हम देख चुके हैं इस गच्छ से सम्बद्ध १५वीं-१६वीं शती की जिन प्रतिमाओं की संख्या पूर्व की शताब्दियों की अपेक्षा अधिक है। इन पर उत्कीर्ण लेखों से इस गच्छ के विभिन्न मुनिजनों के नाम ज्ञात होते हैं, तथापि उनमें से कुछ के पूर्वापर सम्बन्ध ही निश्चित हो पाते हैं। इनका विवरण इस प्रकार है :

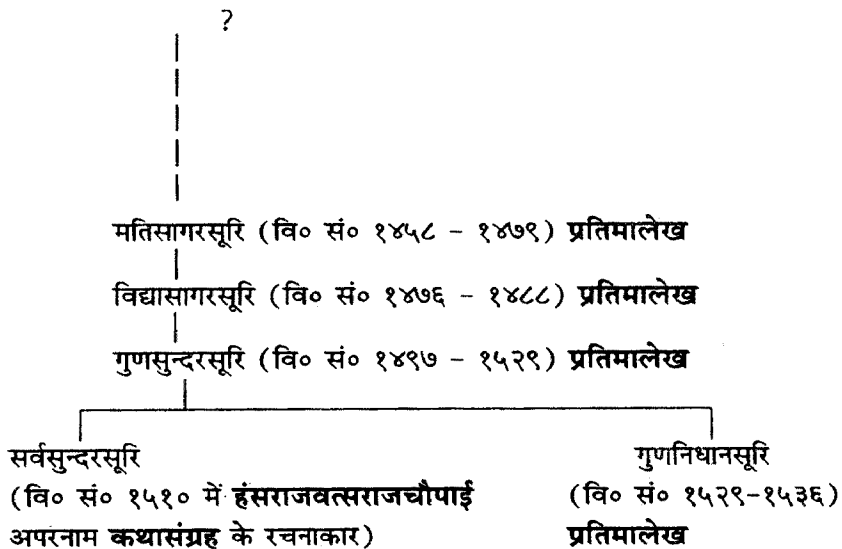
- |  |              |
|--|--------------|
| १. मतिसागरसूरि (वि० सं० १४५८-१४७९)                             | ३ प्रतिमालेख |
| २. मतिसागरसूरि के पट्टधर विद्यासागरसूरि<br>(वि० सं० १४७६-१४८८) | ७ प्रतिमालेख |

३. विद्यासागरसूरि के पट्टधर गुणसुन्दरसूरि (वि० सं० १४९७ - १५२९)	४३ प्रतिमालेख
४. गुणसुन्दरसूरि के पट्टधर गुणनिधानसूरि (वि० सं० १५२९-१५३६)	८ प्रतिमालेख
५. गुणनिधानसूरि के पट्टधर गुणसागरसूरि (वि० सं० १४४३-१५४६)	२ प्रतिमालेख
६. गुणसागरसूरि के शिष्य (?) लक्ष्मीसागरसूरि (वि० सं० १५४९-१५७२)	६ प्रतिमालेख

मलधारी गुणसुन्दरसूरि के शिष्य सर्वसुन्दरसूरि ने वि० सं० १५१०/ ईस्वी सन् १४५४ में **हंसराजवत्सराजचौपाई**<sup>५</sup> की रचना की। यह इस गच्छ से सम्बद्ध वि० सम्वत् की १६वीं शती का एकमात्र साहित्यिक साक्ष्य माना जा सकता है।

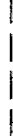
जैसा कि अभिलेखीय साक्ष्यों के अन्तर्गत हम देख चुके हैं वि० सं० १४९७ से वि० सं० १५२९ तक के ४३ प्रतिमालेखों में प्रतिमाप्रतिष्ठापक के रूप में गुणसुन्दरसूरि का नाम मिलता है। **हंसराजवत्सराजचौपाई** के रचनाकार सर्वसुन्दरसूरि ने भी अपने गुरु का यही नाम दिया है, अतः समसामयिकता के आधार पर दोनों साक्ष्यों में उल्लिखित गुणसुन्दरसूरि एक ही व्यक्ति माने जा सकते हैं।

वि० सं० की १५वीं शती के उत्तरार्ध और १६वीं शती तक के इस गच्छ से सम्बन्ध साहित्यिक और अभिलेखीय साक्ष्यों के आधार पर गुरु-शिष्य परम्परा की जो तालिका निर्मित होती है, वह इस प्रकार है :



गुणसागरसूरि

(वि० सं० १५४३-१५४६) प्रतिमालेख



लक्ष्मीसागरसूरि

(वि० सं० १५४९-१५७२) प्रतिमालेख

वि० सं० की १६वीं शती के अन्तिम चरण से मलधारगच्छ से सम्बद्ध साक्ष्यों की विरलता इस गच्छ के अनुयायियों की घटती हुई संख्या का परिचायक है। वि० सं० की १७वीं शती के इस गच्छ से सम्बद्ध मात्र दो साक्ष्य मिलते हैं। इनमें प्रथम है सिन्दूरप्रकरवृत्ति<sup>१६</sup>, जो हर्षपुरीयगच्छ के गुणनिधानसूरि के शिष्य गुणकीर्त्तिसूरि द्वारा वि० सं० १६६७/ईस्वी सन् १६११ में रची गयी है। इसी प्रकार वि० सं० १६९९ के प्रतिमालेख<sup>१७</sup> में इस गच्छ के महिमराजसूरि के शिष्य कल्याणराजसूरि का प्रतिमा प्रतिष्ठापक के रूप में उल्लेख मिलता है। यह इस गच्छ का उल्लेख करने वाला अन्तिम उपलब्ध साक्ष्य है। यद्यपि इनसे विक्रम सम्वत् की १७वीं शती के अन्त तक हर्षपुरीयगच्छ का स्वतन्त्र अस्तित्व सिद्ध होता है, तथापि वह अपने पूर्व गौरवमय स्थिति से च्युत हो चुका था और वि० सं० की १८वीं शती से इस गच्छ के अनुयायी ज्ञातियों को तपागच्छ से सम्बद्ध पाते हैं।<sup>१८</sup>

इस गच्छ के प्रमुख आचार्यों का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है :

**अभयदेवसूरि :** श्वेताम्बर परम्परा में अभयदेवसूरि नामक कई आचार्य हो चुके हैं। विवेच्य अभयदेवसूरि प्रश्नवाहनकुल वमाध्यमिकाशाखा से सम्बद्ध हर्षपुरीयगच्छ के आचार्य जयसिंहसूरि के शिष्य थे। प्रस्तुत लेख के प्रारम्भ में इस गच्छ के मुनिजनों द्वारा रचित जिन गन्थों की प्रशस्तियों का विवरण दिया जा चुका है, उन सभी में इनके मुनि जीवन के बारे में महत्त्वपूर्ण विवरण संकलित हैं।<sup>१९</sup> चौलुक्य नरेश कर्ण (वि० सं० ११२०-११५०) ने इनकी निस्पृहता और त्याग से प्रभावित होकर इन्हें 'मलधारी' विरुद प्रदान की। कर्ण का उत्तराधिकारी जयसिंह सिद्धराज (वि० सं० ११५०-११९९) भी इनका बड़ा सम्मान करता था। इनके उपदेश से उसने अपने राज्य में पर्यूषण और अन्य विशेष अवसरों पर पशुबलि निषिद्ध कर दी थी। गोपगिरि के राजा भुवनपाल (वि० सं० की १२वीं शती का छठाँ दशक) और सौराष्ट्र के राजा राखेंगार पर भी इनका प्रभाव था। अपनी आयुष्य को क्षीण जानकर इन्होंने ४५ दिन तक अनशन किया और अणहिलपुरपत्तन में स्वर्गवासी हुए। इनकी शवयात्रा प्रातःकाल प्रारम्भ हुई और तीसरे प्रहर दाहस्थल तक पहुँची। जयसिंह सिद्धराज ने अपने परिजनों के साथ राजप्रासाद की छत पर से इनकी अन्तिम यात्रा का अवलोकन किया। इनके पट्टधर हेमचन्द्रसूरि हुए।

## हेमचन्द्रसूरि

जैसा कि पूर्व में कहा जा चुका है आप हर्षपुरीयगच्छालंकार अभयदेवसूरि के शिष्य और पट्टधर थे। श्रीचन्द्रसूरि विरचित मुनिसुव्रतचरित<sup>३०</sup> (रचनाकाल वि० सं० ११९३/ई० सन् ११३७) एवं राजशेखरसूरि कृत प्राकृतद्वयाश्रयवृत्ति<sup>३१</sup> की प्रशस्तियों से इनके सम्बन्ध में विस्तृत जानकारी प्राप्त होती है। विशेषावश्यकभाष्यबृहद्वृत्ति (रचनाकाल वि० सं० ११७०/ई० सन् १११४) की प्रशस्ति में इन्होंने स्वरचित ९ ग्रन्थों का उल्लेख किया है,<sup>३२</sup> जो इस प्रकार हैं :

१. आवश्यकटिप्पण, २. शतकविवरण, ३. अनुयोगद्वारवृत्ति, ४. उपदेश-मालासूत्र, ५. उपदेशमालावृत्ति, ६. जीवसमासविवरण, ७. भवभावनासूत्र, ८. भवभावनाविवरण, ९. नन्दीटिप्पण।

**आवश्यकटिप्पण** : ४६०० श्लोकों की यह कृति आचार्य हरिभद्रसूरि विरचित आवश्यकवृत्ति पर लिखी गयी है। इसे आवश्यकवृत्तिप्रदेशव्याख्या के नाम से भी जाना जाता है। इस पर हेमचन्द्रसूरि के ही एक शिष्य एवं पट्टधर श्रीचन्द्रसूरि ने एक और टिप्पण लिखा है जो प्रदेशव्याख्याटिप्पण के नाम से प्रसिद्ध है।

**शतकविवरण** : शिवशर्मसूरिविरचित प्राचीन पंचम कर्मग्रन्थ शतक पर मलधारी हेमचन्द्रसूरि ने संस्कृत भाषा में ३७४० श्लोक प्रमाण वृत्ति अथवा विवरण की रचना की। जैसलमेर के ग्रन्थभंडार में १३वीं-१४वीं शती की इसकी कई प्रतियाँ संरक्षित हैं।

**अनुयोगद्वारवृत्ति** : यह अनुयोगद्वारसूत्र के मूलपाठ पर ५९०० श्लोकों में रची गयी है। इसमें सूत्रों के पदों का सरल व संक्षिप्त अर्थ दिया गया है। कलकत्ता, बम्बई एवं पाटन से इसके चार संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं।<sup>३३</sup>

**उपदेशमालासूत्र** : सुभाषित और सूक्ति के रूप में रचित जैन मनीषियों की अनेक कृतियाँ मिलती हैं। यह कृति भी उसी कोटि में मानी गयी है। इसमें सदाचार और लोकव्यवहार का उपदेश देने के लिए स्वतंत्र रूप से अनेक सुभाषित पदों का निर्माण किया गया है, जिसमें जैनधर्मसम्मत आचारों और विचारों के उपदेश प्रस्तुत किये गये हैं। रचनाकार ने अपनी इस कृति पर वि० सं० ११७५/ई० सन् १११९ में वृत्ति की भी रचना की है। पाटण के जैन ग्रन्थ भण्डारों में इसकी कई प्रतियाँ संरक्षित हैं। जैन श्रेयस्कर मंडल, मेहसाणा से ई० सन् १९११ में प्रकाशित भी हो चुकी है।

**जीवसमासविवरण** : आचार्य हेमचन्द्रसूरि द्वारा रचित यह कृति ६६२७ श्लोकों में निबद्ध है। इसकी स्वयं ग्रन्थकार द्वारा लिखी गयी एक ताड़पत्रीय प्रति खंभात के शांतिनाथ जैन भंडार में संरक्षित है। इस प्रति से ज्ञात होता है कि यह चौलुक्य नरेश जयसिंह सिद्धराज के शासनकाल में वि० सं० ११६४/ई० सन् ११०८ में पाटण में लिखी गयी।

**भावभावनासूत्र** : जैसा कि इसके नाम से ही स्पष्ट होता है इसमें भवभावना अर्थात् संसारभावना का वर्णन किया गया है। इसके अन्तर्गत ५३१ गाथायें हैं। इसमें भवभावना के साथ-साथ अन्य ११ भावनाओं का भी प्रसंगवश निरूपण किया गया है।

ग्रन्थकार ने अपनी इस कृति पर वि० सं० ११७०/ई० सन् १११४ में वृत्ति की रचना की। यह १२५० श्लोकों में निबद्ध है। इस वृत्ति के अधिकांश भाग में नेमिनाथ एवं भुवनभानु के चरित्र आते हैं। यह कृति स्वोपज्ञटीका के साथ ऋषभदेवजी केशरीमलजी श्वेताम्बर संस्था, रतलाम द्वारा दो भागों में प्रकाशित हो चुकी है।

**नंदीटिप्पण** : जैसा कि पूर्व में कहा जा चुका है ग्रन्थकार ने विशेषावश्यक-भाष्यबृहद्वृत्ति की प्रशस्ति में स्वरचित ग्रन्थों में इसका भी उल्लेख किया है। परन्तु इसकी कोई प्रति अभी तक प्राप्त नहीं हो सकी है।

**विशेषावश्यकभाष्यबृहद्वृत्ति** : यह हेमचन्द्रसूरि की बृहत्तम कृति है, इसके अन्तर्गत २८००० श्लोक हैं। इसमें विशेषावश्यकभाष्य के विषयों का सरल एवं सुबोध रूप से प्रतिपादन किया गया है। इस टीका के कारण विशेषावश्यकभाष्य के पठन-पाठन में अत्यधिक वृद्धि हुई। इसके अन्त में दी गयी प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि यह वि० सं० ११७५/ई० सन् १११९ में पूर्ण की गयी।

### विजयसिंहसूरि

आप हेमचन्द्रसूरि के शिष्य थे। श्रीचन्द्रसूरि कृति मुनिसुव्रतस्वामिचरित (रचनाकाल वि० सं० ११९३/ई० सन् ११३७), लक्ष्मणगणि विरचित सुपासनाहचरिय (रचनाकाल वि० सं० ११९९/ई० सन् ११४३), नरचन्द्रसूरि द्वारा रचित कथारत्नसागर एवं देवप्रभसूरि कृत पाण्डवचरितमहाकाव्य की प्रशस्तियों में इनका सादर उल्लेख<sup>२५</sup> है। कृष्णार्धगच्छीय जयसिंहसूरि विरचित धर्मोपदेशमाला (रचनाकाल वि० सं० ११५/ई० सन् ८५९) पर इन्होंने वि० सं० ११९१/सन् ११३५ में १४४७१ श्लोक परिमाण संस्कृत भाषा में वृत्ति की रचना की। इसके अन्तर्गत कथाओं का विस्तार से वर्णन किया गया है।

### श्रीचन्द्रसूरि

आप विजयसिंहसूरि के लघु गुरुभ्राता और मलधारी हेमचन्द्रसूरि के पट्टधर थे। जैसा कि पूर्व में कहा जा चुका है इन्होंने वि० सं० ११९३/ई० सन् ११३७ में प्राकृत भाषा में मुनिसुव्रतस्वामिचरित की रचना की। यह प्राकृत भाषा में उक्त तीर्थङ्कर पर लिखी गयी एकमात्र कृति है। इसकी प्रशस्ति के अन्तर्गत ग्रन्थकार ने अपनी गुरु-परम्परा का अत्यन्त विस्तार से साथ परिचय दिया है। इनकी दूसरी महत्त्वपूर्ण कृति है संग्रहणीरत्नसूत्र<sup>२६</sup> जिस पर इनके शिष्य देवभद्र सूरि ने साढ़े तीन हजार श्लोक प्रमाण वृत्ति की रचना की। वि० सं० १२२२/ई० सन् ११६६ में इन्होंने अपने गुरु की कृति आवश्यकप्रदेशव्याख्या पर टिप्पण की रचना की।<sup>२७</sup> लघुक्षेत्रसमास भी इन्हीं की कृति है।<sup>२८</sup>



## लक्ष्मणगणि

आप भी मलधारी आचार्य हेमचन्द्रसूरि के शिष्य थे। जैसा कि पूर्व में कहा जा चुका है इन्होंने वि० सं० ११९९/ई० सन् ११४३ में प्राकृत भाषा में सुपासनाहचरिय की रचना की। इसके अतिरिक्त इन्होंने अपने गुरु को विशेषावश्यकभाष्यबृहद्वृत्ति के लेखन में सहायता दी।<sup>२८</sup> यह बात उक्त ग्रन्थ की प्रशस्ति से ज्ञात होती है।

## देवभद्रसूरि

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है ये श्रीचन्द्रसूरि के शिष्य थे। इन्होंने अपने गुरु की कृति संग्रहणीरत्नसूत्र पर वृत्ति की रचना की। न्यायावतारटिप्पणक और बृहत्क्षेत्र-समासटिप्पणिका (रचनाकाल वि० सं० १२३३/ई० सन् ११७७) भी इन्हीं की कृति हैं।

## देवप्रभसूरि

ये मलधारी श्रीचन्द्रसूरि के प्रशिष्य और मुनिचन्द्रसूरि के शिष्य थे। इनके द्वारा रचित पाण्डवचरित का पूर्व में उल्लेख किया गया है।<sup>२९</sup> इसमें १८ सर्ग हैं। इसका कथानक लोकप्रसिद्ध पाण्डवों के चरित्र पर आधारित है, जो कि जैन परम्परा के अनुसार वर्णित है। यह एक वीररस प्रधान काव्य है। पाण्डवचरित के कथानक का आधार षष्ठांगोपनिषद्<sup>३०</sup>, त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित तथा कुछ अन्य ग्रन्थ हैं, यह बात स्वयं ग्रन्थकर्ता ने ग्रन्थ के १८वें सर्ग के २८०वें पद्य में कही है। इसके अतिरिक्त मृगावतीचरित अपरनाम धर्मशास्त्रसार, सुदर्शनाचरित, काकुस्थकेलि आदि भी इन्हीं की कृतियाँ हैं।

## नरचन्द्रसूरि

जैसा कि प्रारम्भ में कहा जा चुका है ये मलधारी देवप्रभसूरि के शिष्य और महामात्य वस्तुपाल के मातृपक्ष के गुरु थे। ये कई बार वस्तुपाल के साथ तीर्थयात्रा पर भी गये थे। महामात्य के अनुरोध पर इन्होंने १५ तरंगों में कथारत्नसागर<sup>३१</sup> की रचना की। इसमें तप, दान, अहिंसा आदि सम्बन्धी कथायें दी गयी हैं। इसका एक नाम कथारत्नाकर भी मिलता है। वि० सं० १३१९ में लिखी गयी इस ग्रन्थ की एक प्रति पाटण के संघवीपाड़ा ग्रन्थभंडार में संरक्षित है। इसके अतिरिक्त इन्होंने प्राकृतप्रबोधदीपिका, अनर्घराघव-टिप्पण, ज्योतिषसार अपरनाम नारचन्द्रज्योतिष, साधारणजिनस्तव आदि की भी रचना की और अपने गुरु देवप्रभसूरि के पाण्डवचरित तथा नागेन्द्रगच्छीय उदयप्रभसूरि के धर्माभ्युदयमहाकाव्य का संशोधन किया।<sup>३२</sup> महामात्य वस्तुपाल के वि० सं० १२८८ के गिरनार के दो लेखों के पद्यांश<sup>३३</sup> तथा २६ श्लोकों की वस्तुपालप्रशस्ति भी इन्होंने ही लिखी है।<sup>३४</sup>

## नरेन्द्रप्रभसूरि

ये मलधारी नरचन्द्रसूरि के शिष्य एवं पट्टधर थे। महामात्य वस्तुपाल के अनुरोध एवं अपने गुरु के आदेश पर इन्होंने वि० सं० १२८० में अलंकारमहोदधि की रचना की। यह आठ तरंगों में विभक्त है। इसके अन्तर्गत कुल ३०४ पद्य हैं। यह अलंकार-

विषयक ग्रन्थ है। वि० सं० १२८२ में इन्होंने अपनी उक्त कृति पर वृत्ति की रचना की जो ४५०० श्लोक परिमाण है।<sup>३५</sup> इसके अतिरिक्त **विवेककलिका**, **विवेकपादप**, **वस्तुपाल** की क्रमशः ३७ और १०४ श्लोकों की प्रशस्तियाँ<sup>३६</sup> तथा वस्तुपाल द्वारा निर्मित गिरनार स्थित आदिनाथ जिनालय के वि० सं० १२८८ के एक शिलालेख<sup>३७</sup> का पद्यांश भी इन्हीं की कृति है।

### राजशेखरसूरि

राजशेखरसूरि मलधारी नरेन्द्रप्रभसूरि के पट्टधर पद्मतिलकसूरि के प्रशिष्य तथा श्रीतिलकसूरि के शिष्य थे। **न्यायकंदलीपंजिका** (वि० सं० १३८५/ई० सन् १३२९); **प्राकृतद्वयाश्रयवृत्ति** (वि० सं० १३८६/ई० सन् १३३०) तथा **प्रबन्धकोश**<sup>३८</sup> अपरनाम **चतुर्विंशतिप्रबन्ध** (वि० सं० १४०५/ई० सन् १३४९) इनकी प्रमुख कृतियाँ हैं। इनके अतिरिक्त इन्होंने **स्याद्वादकलिका**, **रत्नकरावतारिकापंजिका**, **कौतुककथा** और **नेमिनाथफागु** की भी रचना की।<sup>३९</sup> वि० सं० १३८६ से वि० सं० १४१५ तक इनके द्वारा प्रतिष्ठापित ५ उपलब्ध जिनप्रतिमाओं का पूर्व में उल्लेख किया जा चुका है।

इनके शिष्य **सुधाकलश** द्वारा रचित दो कृतियाँ मिलती हैं, इनमें प्रथम हैं **संगीतोपनिषद्सारोद्धार** जो वि० सं० १४०६/ईस्वी सन् १३५० में रचा गया है। इसकी प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि यह ग्रन्थकार द्वारा वि० सं० १३८०/ई० सन् १३२४ में लिखी गयी **संगीतोपनिषद्** का संक्षिप्त रूप है। ५० गाथाओं में रचित **एकाक्षरनाममाला** इनकी दूसरी उपलब्ध कृति है।

### सन्दर्भ

1. Muni Punya Vijaya : *Catalogue of Palm Leaf Mss in the Shanti Natha Jaina Bhandara, Cambay, Vol. I, G. O. S. No. 135, Baroda, 1961 A. D., pp. 66-67.*
2. P. Peterson : *Fifth Report of Operation in Search of Sanskrit Mss in the Bombay Circle, Bombay 1896 A. D., pp. 88-89.*  
C. D. Dalal : *A Descriptive Catalogue of Manuscripts In the Jaina Bhandars at Pattan, Vol. I, G. O. S. No. LXXVI, Baroda 1937 A. D., pp. 311-313.*
3. **मुनिसुव्रतस्वामिचरित**, संपा० पं० रूपेन्द्रकुमार पगारिया, लालभाई दलपतभाई ग्रन्थमाला, ग्रन्थांक १०६, अहमदाबाद १९८९ ईस्वी, पृष्ठ ३३७-३४१।
4. **सुपासनाहचरिय**, संपा० पं० हरगोविन्ददास, जैन विविध साहित्य शास्त्रमाला, ग्रन्थांक १२, बनारस १९१८ ई०, प्रशस्ति।
5. Muni Punya Vijaya : *Catalogue of Palm-Leaf Mss in the Shanti*

६६ : श्रमण/अप्रैल-जून/१९९६

*Natha Jaina Bhandara, Cambay, Vol. II, G. O. S., No. 149, Baroda 1966 A. D., pp. 243-244.*

६. *Ibid*, pp. 374-376.

Muni Punya Vijaya : *New Catalogue of Sanskrit and Prakrit Mss. : Jesalmer Collection, L. D. Series No. 36, Ahmedabad 1972 A. D., p. 177.*

७. C. D. Dalal : *A Descriptive Catalogue of Mss. In the Jaina Bhandars at Pattan*, p. 14.

८. अलंकारमहोदधि, संपा० पं० लालचन्द भगवानदास गांधी, गायकवाड प्राच्य ग्रन्थमाला, ग्रन्थांक XLV, बडोदरा १९४२ ईस्वी, प्रशस्ति, पृष्ठ ३३९-३४०।

९. पं० लालचन्द भगवानदास गांधी : ऐतिहासिक लेख संग्रह, सयाजीराव साहित्य-माला, पुष्प ३३५, बडोदरा १९६२ ईस्वी, पृष्ठ ७६-७७।

१०. A. P. Shah : *Catalogue of Sanskrit and Prakrit Mss. Muni Shree Punya ViJayaji's Collection, Vol. II, L. D. Series No. 6, Ahmedabad 1965 A. D., pp. 217-218.*

*Sangitopanisat-Saroddhara, Ed. U. P. Shah, G. O. S. No. 133, Baroda 1961 A. D.*

११. द्रष्टव्य : संदर्भ क्रमांक ६।

१२. मोहनलाल दलीचंद देसाई : जैन साहित्यनो संक्षिप्त इतिहास, बम्बई १९३३ ई०, पृष्ठ ३८९।

१३. भोगीलाल सांडेसरा : महामात्य वस्तुपाल का साहित्यमंडल और संस्कृत साहित्य में उसकी देन, सन्मति प्रकाशन नं० १५, वाराणसी १९५९ ईस्वी, पृष्ठ १०१-१०४।

१४. P. Peterson : *Search of Sanskrit Mss.*, Vol. V, pp. 95-97.

१५. देसाई, पूर्वोक्त, पृष्ठ ५१४

१६. H. D. Vilankar : *Jinaratnakosha*, Bhandarkar Oriental Research Institute, Government Oriental Series, Class C, No. 4, Poona 1944 A. D., p. 442.

१७. पूरनचन्द नाहर, संपा० जैन लेख संग्रह, भाग-२, कलकत्ता १९२७ ईस्वी, लेखांक १८९९।

१८. त्रिपुटी महाराज : जैन परम्परानो इतिहास, भाग-२, चारित्र स्मारक ग्रन्थमाला, ग्रंथांक ५४, अहमदाबाद १९६० ईस्वी, पृष्ठ ३३८।

१९. पं० लालचन्द भगवानदास गाँधी : ऐतिहासिक लेख संग्रह, पृष्ठ १७-४९, तथा श्रीचन्द्रसूरि विरचित मुनिसुव्रतस्वामिचरित की प्रशस्ति।

२०. द्रष्टव्य : संदर्भ, क्रमांक ३।
२१. पं० लालचन्द भगवानदास गांधी, पूर्वोक्त, पृष्ठ ७६।
२२. मोहनलाल मेहता : **जैन साहित्य का बृहद् इतिहास**, भाग-३, पार्श्वनाथ विद्याश्रम ग्रन्थमाला, ग्रन्थांक ११, वाराणसी १९६७ ईस्वी, पृष्ठ २४२।
२३. वही, पृष्ठ २४३।
२४. पं० लालचन्द भगवानदास गांधी, पूर्वोक्त, पृष्ठ ८०-८१।
२५. **जिनरत्नकोश**, पृष्ठ ४१०।
२६. वही, पृष्ठ ३८।
२७. द्रष्टव्य : संदर्भ क्रमांक ४।
२८. गांधी, पूर्वोक्त, पृष्ठ १२३।
२९. द्रष्टव्य : संदर्भ क्रमांक ६।
३०. **ज्ञातृधर्मकथा** का एक नाम।
३१. द्रष्टव्य : संदर्भ क्रमांक ७।
३२. सांडेसरा, पूर्वोक्त, पृष्ठ १०२-१०४।
३३. मुनि जिनविजय : **प्राचीन जैन लेख संग्रह**, भाग-२, भावनगर १९२१ ईस्वी, लेखांक ३९-२; ४२-५।
३४. **अलंकारमहोदधि**, संपा० पं० लालचंद भगवानदास गांधी, परिशिष्ट क्रमांक ४, पृष्ठ ४०१-४०३।
३५. सांडेसरा, पूर्वोक्त, पृष्ठ १०४-१०६।
३६. **अलंकारमहोदधि**, परिशिष्ट, क्रमांक ५-६, पृष्ठ ४०४-४१६।
३७. मुनि जिनविजय, पूर्वोक्त, लेखांक ४१-४।
३८. **प्रबन्धकोश**, संपा० मुनिजिनविजय, सिंधी जैन ग्रन्थमाला, ग्रन्थांक ६, शांति निकेतन १९३५ ई०।
३९. मोहनलाल दलीचंद देसाई, पूर्वोक्त, पृष्ठ ४३७।

### संकेत सूची

- जै० ले० सं० — जैन लेख संग्रह, संपा० पूरनचन्द नाहर  
 प्रा० जै० ले० सं० — प्राचीन जैन लेख संग्रह, संपा० मुनि जिनविजय  
 अ० प्रा० जै० ले० सं० — अर्बुद प्राचीन जैन लेख संदोह, संपा० मुनि जयन्तविजय  
 जै० धा० प्र० ले० सं० — जैन धातु प्रतिमा लेख संग्रह, संपा० मुनि बुद्धिसागर, भाग १, २  
 प्रा० ले० सं० — प्राचीन लेख संग्रह, संपा० विजयधर्मसूरि  
 बी० जै० ले० सं० — बीकानेर जैन लेख संग्रह, संपा० अगरचन्द नाहटा  
 जे० ए० एस० ओ० बी० — जर्नल ऑव एशियाटिक सोसाइटी ऑव बाम्बे

**Statement About Ownership & Other Particulars  
of the paper**

**ŚRAMAᅇA**

1. Place of Publication : Pārśvanātha Vidyāpīᅇha  
I. T. I. Road, Varanasi - 5.
2. Periodicity of Publication : First week of English Calender  
month.
3. Printer's Name, Nationality and Address : Dr. Sagarmal Jain, Indian  
Vardhaman Mudranalaya,  
Jawahar Nagar, Varanasi -  
221 010.
4. Publisher's Name, Nationality and Address : Dr. Sagarmal Jain, Indian  
Pārśvanatha Vidyāpīᅇha I. T. I.  
Road, Varanasi - 5.
5. Editor's Name, Nationality and Address : As above
6. Names and Address of Individuals who own the Paper and Partners or Share-holders holding more than one percent of the total capital. : Pārśvanātha Vidyāpīᅇha  
I. T. I. Road, Karaundi, P. O.  
B. H. U., Varanasi - 5  
( Registered under Act XXI as  
1860 ).

I, Dr. Sagarmal Jain, hereby declare that the particulars given above are true to the best of the my knowledge and belief.

Dated 1-4-1996

Signature of the Publishers  
S/d. Dr. Sagarmal Jain

# ŚRAMAᅇA

Third Monthly Research Journal of Pārśvanātha Vidyāpīᅇha

Volume 4 - 6 ]

[ April - June, 1996

*General Editor*

**Prof. Sagarmal Jain**

*Editors*

**Dr. Ashok Kumar Singh**

**Dr. Shriprakash Pandey**

For Publishing Articles, News, Advertisement and Membership, Contact

*General Editor*

**Śramāᅇa**

**Pārśvanātha Vidyāpīᅇha**

I. T. I. Road, Karaundi

P. O. : B. H. U.,

Varanasi - 221 005

Phone : 311462

Fax : 0542-311462

**Annual Subscription**

For Institutions : Rs. 60.00

For Individual : Rs. 50.00

Single Issue : Rs. 15.00

**Life Membership**

For Institutions : Rs. 1000.00

For Individual : Rs. 500.00

# ŚRAMAṆA

## English Section

### Articles of this Volume

	Pages
1. <b>The Story of the Origin of Yāpanīya Sect</b>	71 - 83
Prof. S. M. Jain	
Trans. : Dr. Ashok Kumar Singh	
2. <b>Philosophical Aspect of Non-violence</b>	84 - 111
Dr. Bashishtha Narayan Sinha	
३. साहित्य समीक्षा	११२ - १२०
४. जैन जगत्	१२१ - १२८



# The Story of the Origin of Yāpanīya Sect

*Prof. Sagarmal Jain*

*Trans. Dr. Ashok Kumar Singh*

Both Śvetāmbaras and Digambaras have put forth their own account of the origin of Yāpanīya or Boṭika sect. Śvetāmbara story, as contained in, *Viśeṣāvaśyakabhāṣya* and *Āvaśyaka Cūrṇi* ( 6th-7th century ) narrated that once upon a time, preceptor Āryakṛṣṇa visited a garden, Dīpaka, in Rathavirapur town. There lived a man Sahasramalla Śivabhūti, whose late arrival at home at night, often led him quarrel with his mother and wife. Once at a particular night, his mother admonished him to go to the door, that was still open. Dejected Śivabhūti on his way out, saw the doors of a Jaina monastery open and entered there. He saluted Jaina monks there and expressed his desire to initiate. At the outset, Jaina preceptor was unwilling, but when Śivabhūti plucked his hairs, himself, Ācārya bestowed the symbols of monkhood ( *Munilīṅga* ) to him. Later on a king visited Rathavirapura and gifted a blanket, set with gems to Śivabhūti. Ācārya Āryakṛṣṇa, objected to it and preached about the futility of such a precious possession for monks. Without intimating Śivabhūti, Ācārya tore the blanket into pieces and made seats of it. This led to a controversy between Āryakṛṣṇa and Śivabhūti.

Once, while Āryakṛṣṇa was preaching *Jinakalpa*, Śivabhūti, inquired about the cause of its non-observation in the present and the reason for possessing the articles ( *Upādhis* ) by monks. Ācārya propounded that after Jambūsāmī *Jinakalpa* became extinct. Śivabhūti resolved to practise *Jinakalpa* and held that pos-



session being the root of a number of defilements, such as passions, attachments etc. was useless. He further argued that canons advocated non-possession, the seer ( Jinendra ) himself was non-clothed ( *acela* ), hence nudity ( *acelakatā* ) is superior. Refuting this, Ācārya sarcastically maintained that the body also being the cause of passions, attachments etc., it must be got rid of. Ācārya further argued that non-possession, preached in canons, meant only non-attachment in religious articles. Jinas, possessing piece of cloth ( *Devadūṣya* ), at the time of their initiation, were themselves not naked in the absolute sense of the term. These arguments of Āryakṛṣṇa could not deter him and more so, the rise of karman caused him to abandon clothes and he ultimately parted company with the *Saṅgha*.

Later on, when Śivabhūti's sister Uttarā came to pay homage to him, followed him and turned non-clothed. When Uttarā went to the town to receive alms etc. a prostitute, claiming that her ( Uttarā's ) nudity would cause detachment among people towards them ( prostitutes ) or in other words, the people would not be attracted towards them, tied a piece of cloth over her ( Uttarā's ) breasts. Śivabhūti, also prevailed upon unwilling Uttarā to wear clothes as bestowed upon by gods. Śivabhūti had two disciples : Kaudīnya and Koṭyavīra, through whom his tradition flourished onward.<sup>1</sup>

Ardhamāgadhī, Jaina canons, as well as sculptures and inscriptions of Mathurā, corroborated the use of piece of cloth by monks to cover their nudity during the time of Āryakṛṣṇa.<sup>2</sup> Probably, it was on this point, i. e., the use of clothes, that Śivabhūti dissented from Āryakṛṣṇa, as depicted in the preceding episode. As regards the other facts, contained in the story, it was only natural that in tune with the action of Śivabhūti, his sister Uttarā along with other nuns, adopted nudity. But Śivabhūti, taking into account the impropriety of the nudity of nuns, persuaded them to put on a piece of cloth as god-gifted, on the line of *Tirthaṅkaras* possessing

*Devadūṣya*, at the time of initiation.

The above story, having a certain degree of sectarian elements, established firstly, that on the question of nudity *Boṭikas* parted company with their original tradition and secondly that *Boṭikas* or *Yāpanīyas* allowed nuns to cover their nudity with a piece of cloth. Moreover, this story, bore a significant historical fact also as *Āryakṛṣṇa* and *Śivabhūti*, figured herein are found in the hagiological list ( *Sthavirāvalī* ) of *Kalpasūtra*. It may be pointed out that Jaina works are not unanimous on the chronological order or teacher-disciple relationship between *Āryakṛṣṇa* and *Śivabhūti*.<sup>3</sup>

In Digambara tradition first, of the two stories related with the origin of the *Yāpanīya* sect, is contained in *Darśanasāra*, of *Devasena* (10th century A. D.). According to it, 205 years after the demise of *Vikram* a *Śvetāmbara* monk *Kalaśa* founded this sect at *Kalyāṇanagara*.<sup>4</sup> *Darśanasāra* does not provide any further clue.

The second story, occurred in *Bhadrabāhucarita* of *Ratnanandī* ( 15th century A. D. ) narrated that *Nṛkulādevī*, the queen of the king *Bhūpāla* of *Karahāṭaka*, requested him to invite some Jaina monks, present at her paternal town, then. Accordingly, the minister *Budhisāgara* was despatched to request the monks to visit *Karahāṭaka*. Monks consented and visited *Karahāṭaka*. The king *Bhūpāla* went to receive them. They were wearing clothes and possessing alms-pot, sticks. Therefore, considering them as lax conduct monks, king sent them back. The queen *Nṛkulādevī* requested the monks to come again pretending to be Digambara monks with peacock-feather brush ( *picchī* ) and *Kamaṇḍalu*. Heeding to her advice, monks entered the town, accordingly. As a result, the appearance and conduct of those monks was that of Digambara and *Śvetāmbara*, respectively. According to *Ratnanandī* it was through the group of these monks that *Yāpanīya* sect came into existence.

But *Ratnanandī*'s version of origin of *Yāpanīya* sect may not be agreed upon. Because, to assume *Yāpanīya* tradition to be

originated from Śvetāmbara tradition as such is misleading. Rather it emanated from the original tradition known as *Nirgrantha* tradition, anterior to both Śvetāmbara and Digambara sects.

In point of fact, when the practice of violations, regarding the rules of food, pots etc. increased in religious order of Mahāvīra, and integrity of nudity began to decline, those opposed to and advocates of wearing clothes etc., grouped themselves as Yāpanīyas and Śvetāmbaras, respectively. Again, the place of origin of Yāpanīyas was not South India, rather it was North India. The idea that Yāpanīyas entered the South India, pretending as Śvetāmbara, is quite misleading. At its best, it may be said that in appearance as well as conduct Yāpanīyas partially resembled both Śvetāmbaras as well as Digambaras.

Indranandī in his *Nītisāra*, included Yāpanīyas among five pseudo-Jaina sects, namely Gopucchika, Śvetavāsā, Draviḍa, Yāpanīya and Nihpicchika.<sup>5</sup> But he has not given any clue to their origin. The verses of Indranandī, suggested only this much firstly, that Yāpanīya tradition was different from the Mūlasaṅgha of Digambara tradition and secondly, that Yāpanīyas were pseudo-Jainas and they were not the true representatives of Jaina tradition. In fact, all the accounts, dealing with the origin of Yāpanīyas, have been put-forth, invariably by the adversaries of Yāpanīyas, hence failed to present real picture of this sect.

In my opinion, the foregoing discussion as well as depictions at Mathurā, explicitly suggest that during the time of Ārya-kṛṣṇa, i.e., second century V.S. Jaina monks, possessed as a rule, one cloth, peacock-feather-brush ( *Picchī* or *Rajoharaṇa* ) and bowls. Though it can not be denied that the possession of all the fourteen *Upādhis*, as mentioned in *Chedasūtras*, were not in practice in literal sense, yet Jaina monks positively held a piece of cloth to cover their nudity and had a bowl to receive alms. Another piece of cloth was also possessed by them as mouth mask ( *Mukhavastrikā* ). The former of the two, was kept on the wrist by

monks to cover their nudity, particularly at the occasion of visiting towns for alms. It was on this point of possessing clothes that Śivabhūti dissented from Āryakṛṣṇa.

Jaina literary sources reveal contrary facts as to the preceptor-disciple relation between Āryakṛṣṇa and Śivabhūti. According to *Āvaśyaka-mūlabhāṣya*, there was preceptor-disciple relation between Āryakṛṣṇa and Śivabhūti, while the hagiological list of *Kalpasūtra* explicitly mentioned Śivabhūti as predecessor to Āryakṛṣṇa. However, this, in no way, hindered the contemporaneity of the two. The fact remained that there was a difference of opinion between them. The anecdote of the blanket set with gems ( *Ratnakambala* ) as contained in the works of Śvetāmbara tradition, is also not authentic. In fact, after emancipation of Mahāvīra, the tendency of possessing clothes and begging bowls, crept into his order with an increasing trend. Though minor monks ( *kṣullakas* ), monks with abnormal organs ( *Sadoṣa-liṅgas* ) and those hailing from royal families were allowed to have clothes etc. as an exception ( *apavāda mārḡa* ). But when this exception ( *apavāda mārḡa* ) began to assume the form of practice or rule ( *utsarga-mārḡa* ) among monks, considering *Jinakalpa* as extinct, Śivabhūti tried to make nudity essential for monks. Prior to him, Āryarakṣita also had to prevail over his father, who was initiated into the former's *Saṅgha*, to adopt nudity. As his father was hesitant in practising nudity before his kinsmen Āryarakṣita, himself, allowed the monks to keep an extra bowl, in rainy season to excrete, in addition to begging bowls. Even during the time of Mahāvīra, monks were not resolute in observing nudity as a rule rather it was exceptional. But considering the *Jinakalpa*, as extinct, when Jaina monks started treating the holding of clothes as a rule and not as exception, then Śivabhūti, was forced to make drive to establish nudity as a rule. He opposed the concept of extinct of *Jinakalpa* and maintained that all the capable monks ought to practise nudity and be hand-bowled. Nevertheless, in exceptional cases, he was not averse to holding of clothes by monks. *Bhagavatī-*

*ārādhana* also corroborated his views. Yet it is hard to believe that his attempt to revive nudity as an essential practice was the sole factor behind the division of *Sangha*, because the first *gāthā* of hagiological list of *Kalpasūtra* annexed finally in 5th century, at the time of Devarddhigani, contains the name of Falgumitra of Gautam clan, Dhanagiri of Vaśiṣṭha clan, Śivabhūti of Kotsa clan and Durjayanta Kṛṣṇa of Kauśika clan. As mentioned earlier, Śivabhūti's name figures before Āryakṛṣṇa's name in it. It is not in conformity with that of *Āvaśyaka-mūlabhāṣya*, where Śivabhūti is referred to as disciple of Āryakṛṣṇa. This problem, may be reconciled if both are considered as the disciples of the one teacher. Again, it does not stand in the way of their contemporaneity. However, the crux of the matter was that they had a difference of opinion regarding possessions and it was through Kauḍinya and Koṭya-vīra, the disciples of Śivabhūti that this tradition of Yāpanīya flourished.

### Place of the Origin of Yāpanīyas

Śvetāmbara and Digambara traditions differ regarding the place of origin of Yāpanīyas. Śvetāmbaras held that it was Rathavirapura, near Mathurā, in North India, while Digambaras claim that it was Kalayāna in South India or Karahaṭaka in North-West Karnāṭaka. Thus to Śvetāmbaras their place of origin was North India, and for Digambaras it was South India. Let us examine, the evidences for and against the places, advocated by both the traditions. I find the claim of Śvetāmbaras nearer to the truth. Because the names of both the Ācāryas, Āryakṛṣṇa and Śivabhūti, directly associated, traditionally with the origin of Yāpanīyas, figured in the hagiological list of *Kalpasūtra*. Also the image of Āryakṛṣṇa, holding a piece of cloth to cover his nudity, with inscriptions, has been discovered at Mathurā. In this case, the account of *Āvaśyaka-mūlabhāṣya*, that is the Śvetāmbara view of origin, appeared more realistic. Digambara theory of origin, on the other hand, given by Ratnanandī, holds no ground, firstly, because his work belonged to

a period, nearly 1200 years after their origin, when the Yāpanīya tradition had almost become part of the history. Secondly, as the Ratnanandi's account is not substantiated by any other literary as well as epigraphic evidence. Thirdly, the very existence of Kalyāṇa, prior to 10th century, is doubtful. It appears that the Digambara theory of Southern origin of Yāpanīya, came into being because Digambaras had come into contact with Yāpanīya in Southern India.

### Inscriptional Evidences of the Yāpanīya Sect

We come to know about the preceptors, Bhaṭṭārakas and house-holders of Yāpanīya Sect from literary sources and epigraphic evidences. Of the two, the inscriptional evidences, being contemporary and shunning the possibility of tampering with, are more authentic. There are a number of inscriptions pertaining to Yāpanīya Sect. Prof. A. N. Upadhye has exploited these inscriptions, in his article, fully. I have presented my observation making first hand study of the relevant inscriptions, available so far, in addition to Prof. Upadhye's article. Earliest inscription relating to Yāpanīya sect, is that of Mṛgeśa Varman of Kadamba dynasty ( C. 479-490 A. D.).<sup>6</sup> This inscription refers to the grant of land, made to Yāpanīyas, Nirgranthas and Kūrcakas. Another inscription, approximately of the same period ( C. 497-537 A.D.) as above, referred to four Yāpanīya preceptors, ācāryas and monks — Dāmakīrti, Jayakīrti Pratihāra, Nimittajñāna Pāragāmī preceptor Bandhusena and Tapodhana knower of scriptures, Kumārdatta.<sup>7</sup> Herein, the Yāpanīyas have been designated as ascetic ( *Yāpanīya-stāpasvinaḥ* ) and engroved on the path of true religion ( *Sad-dharmamārgapratīṣṭhitaḥ* ). The title 'Sūri' herein, has been used for *Ācāryas*. The above inscriptions indicated that the king has made donation for worship in temple, for its security, for its routine expenses in addition to that for eight day festival ( *Aṣṭāhnika Mahotsava* ) and maintenance of Yāpanīya monks. Thus, it is clear that at the time of or even prior to these inscriptions, the specific

arrangement for food etc. of Yāpanīya monks was in practice and the begging was becoming secondary, otherwise references to donations for maintenance would have not been found. Then, there is the inscription of Kṛṣṇaverma ( C. 475-485 A. D. ), of second branch of Kadamba dynasty. It refers to the gift of a piece of land, at Triparvat to Yāpanīya sect, by his son prince Devaverman for repair, worship and maintaining grandeur of the temple of the seer.<sup>8</sup>

It is noteworthy that inscriptions, belonging to a span of three centuries, i. e., 6th, 7th and 8th centuries, on Yāpanīyas are not available. That is why we get the inscription dated 812 A. D. of king Amoghavarṣa of Rāṣṭrakūṭa dynasty after that of Kadamba ( c. 475-485 A. D. ).<sup>9</sup> It refers to the Arkakīrti, the grand disciple of Kuvilācārya and disciple of Vijayakīrti. It also refers to Yāpanīya Nandi Saṅgha, Punnāgavṛkṣamūlagaṇa and Kityācāryānvaya. This inscription also informed that Ācārya Arkakīrti treated the ruler of the country, Puligil from ill-effects of Saturn. It suggests that right from the beginning of 9th century A. D., Yāpanīya monks acquired not only headship of the religious establishment or temples but also adopted medical and incantation ( *Yantra-mantra* ) practices.<sup>10</sup> Another inscription dated about 9th century, found at Chinglepet, Tamilnadu, mentioned the name of Amaramudgalaguru, the disciple of Mahāvīra Ācārya, of Kumiligaṇa of Yāpanīya sect, who inspired the construction of Jaina temple, namely Deśavallabha. This deed of gift indicated that it meant for maintenance of Yāpanīya monks. This inscription also points out that Yāpanīya monks were residing in and had food from the monasteries.

Another deed of grant, pertaining to Yāpanīya sect ( dated C. 945 A. D. ) belonged to Ammarāja II of Eastern Calukya dynasty. He donated village Maliyapuṇḍi to a Jina temple Kaṭakābharāṇa.<sup>11</sup> The head of this temple was saint Śrī Mandiradeva, who was like Jina and was like ocean in virtues. He was the disciple of

pontif like great monk Jinanandi of Nandigaccha of Koṭimaḍuvaḡaṇa of Yāpanīya sect. It is remarkable that the preceding inscription referred to Yāpanīya Nandi Saṅgha, while this one to Yāpanīya Saṅgha Nandigaccha.

An inscription dated c. 980 A. D. of Calukya dynasty informed about the gift of land in favour of a Jaina temple, built by Śāntivarmma.<sup>12</sup> The names of several preceptors of Kaṇḍūra Gaṇa of Yāpanīya sect such as Bāhubalidevacandra, Ravicandrasvāmī, Arhannandī, Śubhacandradeva etc. figure in this inscription. Prabhācandra in this inscription has been referred as *Śabdavidyāgamakamala* and *Ṣaḍtarkakalaṅka*. This Prabhācandra is not the author of the *Prameyakamalamārtaṇḍa* and *Nyāyakumudacandra*, but the commentator of *Śabdānusāsana* of Yāpanīya preceptor Śakaṭāyana.

Prof. P. B. Desai has cited an inscription, found at Saudatti ( Belagaon ) wherein the names of preceptors of Kaṇḍūra Gaṇa of the Yāpanīya sect such as Śubhacandra-I, Candrakīrti, Śubhacandra-II, Nemicandra-I, Kumārakīrti, Prabhācandra and Nemicandra-II figure.<sup>13</sup> Another inscription related to Yāpanīya sect dated C. 1013 A. D. is found at Toḍḍāvasadi ( monastery ) of Belagaon, inscribed on the foot-stool (*Pādapīṭha*) of the Neminātha image, built in 1013 A. D. by Pārisayya of Yāpanīya sect.<sup>14</sup> Likewise, the Raḍhvag inscription, dated 1020 A. D. referred to the gift of land of Huvinavāḡe, to the renowned preceptor Kumārakīrti Paṇḍitadeva of Yāpanīya sect.<sup>15</sup> Hāsura inscription dated 1028-29 referred to a gift of a garden of betel nut, and a few houses for the temple to the preceptor Gurukīrti of this sect.<sup>16</sup>

Two inscriptions of Huli, dated 1044 A. D. referred to Candradeo Bhaṭṭāraka<sup>17</sup> and Rāmacandradeo of *Punnāḡavṛkṣamūlagāṇa* of Yāpanīya sect respectively. The Mugad ( Mysore ) inscription dated, 1045 A. D. also referred to a large number of preceptors of Kumudigāṇa of Yāpanīya sect namely Śri Kīrtigora-vaḍi, Prabhāśaśāṅka, Nayavṛttinātha, Ekavīra, Mahāvīra, Narendrakīrti, Nāḡavikki, Vṛttindra, Niravadyakīrti, Bhaṭṭāraka Mādha-



venu, Balacandra, Rāmcandra, Municandra, Ravikīrti, Kumāra-kīrti, Dāmanandī, Traividya-govardhana, Vaḍḍhācārya etc.<sup>19</sup> Prof. Upadhye held that some of these names appeared in the inscription might be fake but he did not give any argument to support his claim.

The inscription of Morab distt. Dhāravāḍa, referred to the voluntary death ( *Sallekhanā* ) of Nāgacandra, the disciple of Jayakīrtideo of Yāpanīya sect. Herein, Kanakaśakti, the disciple of Nāgacandra has been signalled as *Mantracūḍāmaṇi*.<sup>20</sup> The inscription dated 1096 A. D. belonging to the regime of Tribhuvana-malla, mentioned the grant of a garden by Sovisetti, to the Cāru-kīrti Paṇḍit, the disciple of Municandra Traividya Bhaṭṭāraka of Punnāgavṛkṣamūlagaṇa of Yāpanīya sect.<sup>21</sup> According to this inscription, it was written by Dāyiyayya, the disciple of Municandra Siddhāntadeo. An inscription of Dharamapuri, Distt. Bīḍā, Maharashtra, referred to the donation of a portion of the receipts, collected from various taxes from some villages to Mahāvīra Paṇḍit, for the worship of Lord and maintenance of monks.<sup>22</sup> Similarly, an inscription of 11th century A. D. referred to the grant of a village Cumudavāḍa, by Sivakumāra of Gandha dynasty to the preceptor Devakīrti of Kāreyagaṇa of Māilānvaya of Yāpanīya sect for building a Jaina temple and its maintenance.<sup>23</sup> The preceptors mentioned as predecessors to the Devakīrti, in this inscription include : Śubhakīrti, Jinacandra, Nāgacandra and Guṇakīrti. An inscription dated, 1108 A. D. mentioned that during the time of Ballāladeva and Gaṇadharāditya Bammagavūḍa the disciple of Āryikā ( Nun ) Ratnamatī of Mūlasaṅgha Punnāgavṛkṣamūlagaṇa built a temple.<sup>24</sup> The mention of Mūlasaṅgha, is misleading here. However, the Punnāgavṛkṣamūlagaṇa, figured here, clearly indicated that the nun was Yāpanīya one, as this *Gana* definitely belonged to Yāpanīya sect.

The inscription found at Bailamongala, distt. Belagaon, of the reign of Tribhuvana Malladeva of Calukya dynasty, referred to

the Mūla Bhaṭṭāraka and Jinadevasūri of Mailānvaya Kāreyagaṇa of Yāpanīya sect.<sup>25</sup> The inscription of reign of Vikramāditya VI, found at Huli, distt. Balagaon, referred to the preceptors like Bāhubali, Śubhacandra, Maunideva, Māghanandī etc. Another inscription found at Eksambi, distt. Belagaon, mentioned about the grant of land for the Neminātha monastery built by army-chief Kāḷaṇa of Vijayāditya to Mahāmaṇḍalācārya Vijayakīrti of Punnāgavṛkṣamūlagaṇa of Yāpanīya sect.<sup>27</sup> The preceptors, mentioned, herein, as the predecessors of Vijayakīrti are Municandra, Vijayakīrti-I, Kumārakīrti, Traividya, Vijayakīrti etc.

The Maṇḍuvagaṇa of this sect has been praised lavishly in the inscription of Arsikere Mysore.<sup>28</sup> The image in this temple was consecrated by Bhaṇakaseli, the disciple of Punnāgavṛkṣamūlagaṇa of Yāpanīya Saṅgha. The preceptor of the consecration ceremony was Kumārakīrti, Siddhāntadeo of Maḍuvagaṇa of Yāpanīya sect. The editor has also pointed out the tampering with inscription as the Yāpanīya has been replaced by Kāṣṭhasaṅgha. Again, the Lokapur ( Distt. Belagaon ) inscription dated 12th century A. D. mentioned the teacher Sakalendu Saiddhāntika, Siddhāntacakra-vartin of Kaṇḍūragaṇa of Yāpanīya sect.<sup>29</sup> In inscription, belonging to this region, Manoli Distt. Belagaon, the voluntary death of Pālyakīrti the disciple of Municandradeo of Yāpanīya Saṅgha is inscribed. This Pālyakīrti, may be identified positively with the famous grammarian Pālyakīrti Śākaṭāyana, the author of well known works *Śabdānuśāsana* and its auto-commentary namely *Amoghavṛtti*.<sup>30</sup> Bhāratīya Jñānapīṭha has published the Śakaṭāyana Vyākaraṇa with women liberation ( *Strīmukti* ) and *Kevalī Bhukti Prakaraṇa*. The treatment by him of the latter subject is a testimony of his being Yāpanīya.<sup>31</sup> The inscription of Hukeri, Distt. Belagaon also referred to Traikīrti.<sup>32</sup> The last inscription pertaining to Yāpanīya sect was found at Kagavāda, distt. Belagaon dated 1934.<sup>33</sup> This inscription is inscribed on the foot-stool of image of Lord Neminātha installed in the underground floor and bears the

names of Nemicandra, Dharmakīrti and Nāgacandra of Punnāga-  
vr̥kṣamūlagāṇa of Yāpanīya sect.

### Reference

1. *Āvaśyaka-Niryukti, Haribhadriya Vṛtti*, pp. 216-218.
2. *Jaina Stūpas and other Antiquities of India*, V. A. Smith, Indological Book House, Delhi, 1969, Plate No. 10, 15, 17, p. pp. 24-25.
3. ( a ) *Kalpa-sūtra*, 223/1.  
( b ) *Jaina Stupas and other Antiquities of Mathurā*, Plate No. 10, 15, 17, pp. 24-25.
4. Annals of the BORI, XV. III. IV, p. 191 ff. Pune, 1934, Vide, *Anekānta*, Vol. 28, Issue 1, p. 134.
5. *Bhadrabāhucarita*, Kolhapur, 1921, IV, pp. 135-154. *Anekānta*, Vol 28, Issue
6. gopucchikaḥ śvetavāsaḥ Draviḍo Yāpanīyakah.  
niḥpicchikaśceti pañcate Jainabhāsoḥ Prakīrtitaḥ.
7. *Jainaśilālekhasaṅgraha*, Part 2, No. 99.
8. *Ibid*, Part 2, No. 100.
9. *Ibid*, Part 2, No. 105.
10. *Ibid*, Part 2, No. 124.
11. *Ibid*, Part 4, No. 70.
12. *Ibid*, Part 2, No. 143.
13. *Ibid*, Part 2, No. 160.
14. P. B. Desai, *Jainism in South India and Some Jaina Epigraphs*, Sholapur, 1957, p. 115.
15. *Anekānta*, No. 28, *Kiraṇa* ( Issue ) 1, 1975, pp. 244-253.
16. ( a ) *Journal of the Bombay Historical Society*, II, p. 100.  
( b ) *Anekānta*, No. 28, Issue 1, p. 248.
17. ( a ) *Anekānta*, p. 248.  
( b ) *South Indian Inscriptions*, XII, No. 65, Madras 1940.

18. *Jainaśilālekhasaṅgraha*, Part 4, No. 130.
19. *Ibid*.
20. ( a ) *Anekānta*, 28, Issue 1, p. 248.  
( b ) *South Indian Inscriptions*, XII, No. 78, Madras, 1940.  
( c ) *Jainaśilālekhasaṅgraha*, Part 4, No. 131.
21. *Jainaśilālekhasaṅgraha*, Part 4, No. 143.
22. *Ibid*, 168.
23. *Ibid*, Part 4, No. 69-70.
24. *Indian Antiquary*, Swati Publication, Delhi, 1984 Vol. XVIII, p. 309, Also See, *Jainism in South India*, p. 115.
25. *Jainaśilālekhasaṅgraha*, Part 2, No. 250.
26. *Annual Report of South Indian Inscriptions*, 1951-52, No. 33, p. 12. See also *Anekānta*, Vol. 28, Issue I, p. 248.
27. *Jainaśilālekhasaṅgraha*, Part 4, No. 207.
28. *Ibid*, Part 4, No. 259.
29. *Journal of the Karnataka University*, X, 1965, 159 ff.
30. *Jainaśilālekhasaṅgraha*, Part 5, No. 117.
31. *Jainism in South India*, P. B. Desai, p. 404.
32. *Jainaśilālekhasaṅgraha*, Part 4, No. 384.
33. *Jinavijaya* ( Kannada ), Belagaon, July 1931.





# Philosophical Aspect of Non-violence

*Dr. Bashistha Narayan Sinha*

If not exaggerated, the theory of Non-violence is the best achievement of human mind, which may also be known as the principle of love. As it has been highlighted in the *Mahābhārata* :

“*ahiṃsākojñānatṛptaḥ sa Brahmāsanamarhati.*”<sup>1</sup>

The person who follows the path of Non-violence and is satisfied with knowledge ( *Jñāna* ) is considered worthy to enjoy the respect of sitting on the Brahmā's chair. Non-violence is the foundation-stone of the world-culture. So almost all traditions of philosophy, religion, ethics, sociology, political-science and economics which intend to see this world with harmony and happiness, have propounded and propagated this theory in their own different ways.

## **Vedic Philosophy and Non-violence**

The Vedic tradition is based on the Vedic literatures such as the *Vedas*, the *Upaniṣads*, the *Sūtras*, the *Smṛtis*, the *Rāmāyaṇa*, the *Mahābhārata*, the *Gītā*, etc. in which Vedic philosophy has been introduced and interpreted. The Vedic philosophy has the following four stages :

- ( i ) Naturalistic Anthropomorphic Polytheism,
- ( ii ) Monotheism,
- ( iii ) Henotheism,
- ( iv ) Monism.

The Naturalistic Anthropomorphic Polytheism begins in the *Vedas* and step by step it has developed as the Monism in *Upaniṣads*. In the Naturalistic Anthropomorphic Polytheism various parts and powers of nature which affect the human life are worshipped as deities. In the Monotheism only one God is considered to be the supreme-power and other gods and goddesses are said to be his

subordinates. The Henotheism accepts any god or goddess as the supreme-power according to time and place. But in the Monism there is no God or Theos qualified ( *Saguṇa* ). There is the only superme power Brahma devoid of qualities ( *Nirguṇa* ), who pervades the whole universe. The philosophy of Non-violence is fully influenced by these theories at different stages.

### **Vedas ( Theory of Naturalistic Anthropomorphic Polythesim )**

In the *Vedas* the principle of Non-violence has been expressed through different prayers which directly or indirectly represent the first philosophical theory of Naturalistic Anthropomorphic polytheism. For example

*dyauḥ śāntirantarikṣam śāntiḥ pṛthvī  
śāntirāpaḥ śāntiroṣadhayaḥ śāntiḥ  
vanaspatayaḥ śāntirviśvedevāḥ śānti-  
brahmaśāntiḥ sarvaṁ śāntiḥ śāntireva  
śāntiḥ sā mā śāntirevi.<sup>2</sup>*

- ( i ) Heaven ( *Dyuloka* ) may be peaceful.
- ( ii ) Sky or Ether ( *Antarikṣa* ) may be peaceful.
- ( iii ) Earth ( *Pṛthvī* ) may be peaceful.
- ( iv ) Water ( *Āpa* ) may be peaceful.
- ( v ) Herb ( *Auśadhi* ) may be peaceful.
- ( vi ) Deities ( *Devāḥ* ) may be peaceful.
- ( vii ) Ultimate Reality ( *Brahma* ) may be peaceful.
- ( viii ) All ( *Sarvaḥ* ) may be peaceful.
- ( ix ) Everywhere there may be peace.
- ( x ) The whole universe may be full of peace.

From the viewpoint of Non-violence this prayer may be interpreted in this way : where there is peace there is harmony. Where there is harmony there is friendship. Where there is friendship there is love and where there is love there is Non-violence. This may be known through the following two tables :

<p><b>i</b></p> <p>Peace</p> <p>Harmony</p> <p>Friendship</p> <p>Love</p> <p>Non-Violence</p>	<p><b>ii</b></p> <p>Non-Violence</p> <p>Love</p> <p>Friendship</p> <p>Harmony</p> <p>Peace</p>
---	--

These tables seem to be in ascending and descending orders, but there is nothing like this. These also cannot be compared with Heralitusian Way Up ( earth, water, fire ) and Way Down ( fire, water, earth ). One can start either from Peace or non-violence but result will be the same. So the Vedic *Ṛṣi* expresses his well-wishes that this universe may be full of love and affection. The universe may be full of non-violence. The theory of non-violence is the philosophy of love. The love may have expansion from individual self to God, through family members, neighbours, other human beings and remaining all other beings.

### **Upaniṣads ( Monism )**

When the Upaniṣadic ṛṣi defines a wiseman, he says :

“A wiseman is he who feels himself in other persons and other persons in himself.”

This non-dualistic feeling makes him ( wiseman ) boycott injury.

### **Rāmāyaṇa and Mahābhārata ( Monotheism )**

In the *Rāmāyaṇa* Rāma is the Supreme power, the ultimate reality and God. Everything move according to His sweet will. All beings are parts and parcels of God. So all are equal and nobody should be injured. Same is the case with *Mahābhārata* in which Kṛṣṇa is God and the Supreme power. Non-violence is the super-religion. Kṛṣṇa instructs Arjuna to fight against that which is irreligious ( *Adharma* ) and to establish the religious order ( *Dharma* ). He also teaches him to be indifferent from any interest and achievement ( *Niṣkāma* ). According to Kṛṣṇa Arjuna should fight against *Kauravas* his couṣins, not to kill them and to capture the throne, but

to save religion, morality, justice and social order which are on the verge of ruin due to crimes and cruelties brought by them. The battle-field Kurukṣetra has been treated as Dharmakṣetra, the place of religion. Thus fighting has not been considered here as a crime or injury, because it is the enhancer of religion. That religion which is known as sustainer ( *Dhārayatīti Dharmah* ).

### **Sāṅkhya ( Dualism ) Mīmāṃsā ( Apūrva )**

Sāṅkhya and Mīmāṃsā both the systems of Indian philosophy are known as atheistic branches. They do not accept the existence of God. Prakṛti and Puruṣa are known as the ultimate realities in the Sāṅkhya philosophy. This system of Indian philosophy has established the theory of evolution ( *Vikāsavāda* ), which takes place when Prakṛti and Puruṣa unite together. "Mīmāṃsā believes in the Law of *Karma*, in unseen power ( *Apūrva* ), in heaven and hell, in liberation and in the ultimate authority of the eternal authorless *Vedas*."<sup>3</sup>

The Mīmāṃsā philosophy has layed stress on sacrifice. The Vedic sacrifice is helpful to get all sorts of achievements therefore this system declares :

*"vaidikī hiṃsā, hiṃsā na bhavati."*

The violence prescribed in the *Vedas* is not a violence. The *Vedas* instruct to offer meat of animal to the sacrificial-fire and to eat the remaining part of that as blessing. This is one of the important religious functions. So one should not remark this activity as violence. Though there is a popular religious law :

*"na hiṃsyāt sarvabhūtāni."*

No being should be killed or injured. But there is also an exception to this general rule :

*"agnisomiyam pasūmalabheta."*

Bring animal for Agni and Soma. It means animals may be offered to the sacrificial gods and goddesses.

The Sāṅkhya philosophy has refuted the Mīmāṃsā's theory of offering animals to gods and goddesses at the time of performing sacrifice. As this philosophy has asserted, injury must be treated as



injury at any time at any place. The exception to the law of injury is meaningless. 'na himsyāt sarvabhūtāni' and 'agnisomiyam paśumālabheta' are contradictory to each other. Violence cannot be helpful to any spiritual achievement. According to the Sāṅkhya Philosophy there are three types of sufferings :

- ( i ) Spiritual ( *Ādhyātmika* )
- ( ii ) Physical ( *Ādhibhautika* )
- ( iii ) Caused by Evil-Spirit ( *Ādhidaivika* )

There are three types of ways for being liberated from these sufferings which have been discussed in the *Sāṅkhyatattvakaumudī*

- ( i ) Worldly ( *Laukika* )
- ( ii ) Scriptural method ( *Śāstrīya Upāya* )
- ( iii ) Scriptural Inquisitiveness ( *Śāstrīya Jijñāsā* )

( i ) Worldly ( *Laukika* ) : A hungry man eats bread, boiled rice, vegetables etc. and gets himself free from hunger. A thirsty man takes water to quench his thirst. A person who is ill takes medicines in order to be cured.

( ii ) Scriptural Method ( *Śāstrīya Upāya* ) : The man who has faith in scriptures, performs sacrifice to be free from various sufferings.

( iii ) Scriptural Inquisitiveness ( *Śāstrīya Jijñāsā* ) : The worldly way and scriptural method do not bring full freedom from sorrows and sufferings, because they themselves lack purity. Therefore Scriptural Inquisitiveness is the only way through which one can obtain liberation. One can be free from all of his sufferings only by achieving the true knowledge of Prakṛti and Puruṣa. In this way Sāṅkhya philosophy has repudiated the performance of sacrifice which has been mentioned in the scriptural method.

### **Jaina Philosophy and Non-violence**

Jainism is one of the Śramaṇika traditions. It is also one of the oldest traditions of the world. Neither it accepts God nor it believes in the authority of the *Vedas*. It has its own literature which has been named as the Jaina Āgama. It has propounded the theory of

Relativism ( *Sāpekṣatāvāda* ) which has been addressed as the realistic pluralism ( *Anekāntavāda* ) in its metaphysics, as the theory of relativity ( *Syādvāda* ) in its epistemology and the theory of Non-violence ( *Ahiṃsāvāda* ) in its ethics. Relativism is actually a theory of Non-violence though it has been named so in the field of ethics.

### **Anekāntavāda ( The Realistic Pluralism )**

Jaina metaphysics has assigned :

“*anantadharmātmakam vastu.*”<sup>5</sup>

The *Tattva* which is the ultimate reality has been also named as *Dravya, Padārtha*, Substance. It has infinite characteristics ( *Dharmas* ), which cannot be known by an ordinary person. An ordinary man can know either one ( *Eka* ) or many ( *Aneka* ). He cannot know the infinite. Therefore ‘*Anekānta*’ means many limitations, many extensions, many relations, many points of views. A thing may be known from various angles. All views or angles may be correct in their own limitations. The *Anekāntavāda* is a theory which keeps a knower in his own limitation. So whenever he crosses his own limitation and declares his knowledge as right and complete one and that of other being totally wrong and incomplete, he commits injury. The injury committed by him may be seen in two ways :

1. *Sva-hiṃsā* ( Self-injury ) : The person who presents his partial and incomplete knowledge as a full and complete one, he commits his own injury caused by egoism.

2. *Para-hiṃsā* ( Injury of other ) : When he proclaims that only he possesses correct knowledge because of its completeness and other person has wrong knowledge because of its incompleteness he commits *Para-hiṃsā*, i.e., injury of other by pinching his heart. For nobody wants to be declared as a person with wrong knowledge.

### **Syādvāda ( Theory of Relativity )**

*Syādvāda* is the epistemological theory of Jainism. It provides a method to express the theory of *Anekāntavāda*. It means *Syādvāda* is a theory which guides how to present the relative

knowledge or limited knowledge so that knower may save himself from committing injuries. The *Syādvāda* stands on its base the word 'Syat' which means in some relation 'in some limitation' up to some extent etc. Therefore, when a knower expresses his knowledge with the very word 'Syat', his expression according to Jainism is considered to be limited and relative. He saves himself from presenting his incomplete knowledge in the complete form. At the same time he does not impress other persons wrongly. Other persons do not feel that they are wrong and the only person who has expressed his knowledge is right. In this way they also do not feel any trouble. Here it may be confirmed that *Syādvāda* protects a man from both *Sva-himsā* as well as *Para-himsā* which are committed through the wrong expression of knowledge.

### **Ahimsāvāda ( Theory of Non-violence )**

In the Jaina Ethics Non-violence occupies a full fledged status which will be discussed later on. But here this much must be known that the Jaina conduct has been divided mainly into two parts :

- ( i ) Duties of Saints ( *Śramaṇācāra* )
- ( ii ) Duties of House-holders ( *Śrāvākācāra* )

The five great austerities ( *Pañcamahāvrat* ) — Non-violence ( *Ahimsā* ), Truth ( *Satya* ), Non-stealing ( *Acaurya* ), Celibacy ( *Brahmacarya* ), Non-possessiveness ( *Aparigraha* ) have been prescribed for saints. The five semi-austerities ( *Pañca aṇuvrata* ) have been suggested for the householders. The same five austerities which have been suggested for saints, have been also accepted for the house-holders, but with some limitations.

### **Buddhist Philosophy and Non-violence**

Buddhism is another system of Śramaṇic traditions. In the sixth century B. C. it was brought into existence by Lord Buddha a contemporary of Lord Mahāvīra the 24th *Tīrthankara* of Jainism. This school of Indian philosophy also has hesitated to accept the existence of God and importance of the *Vedas*.

The Buddhist philosophy begins with the Four-Noble-Truths ( *Cāra Ārya Satya* ) :

- ( i ) Sorrow ( *Duḥkha* ),
- ( ii ) Cause of sorrow ( *Duḥkha Samudaya* ),
- ( iii ) Removal of the cause of sorrow ( *Duḥkha Nirodha* ),
- ( iv ) Way to remove the cause of sorrow ( *duḥkha-nirodha-gāmini-pratipada : Aṣṭāṅgamāgra* ).

As Buddha has preached that the world is full of sorrow. There are causes of sufferings, which can be removed by following the Eight-fold-path ( *Aṣṭāṅgamāgra* ). The main problem before Buddha is to make this world free from various tortures and troubles. So the Buddhist scriptures have refuted injury and have supported non-injury.

( a ) *Saṃyuttanikāya* : Neither in mind nor in words nor in action any being should be troubled.<sup>6</sup>

( b ) *Vinayapīṭaka* : Non-violence should be maintained not only with big beings but also with small creatures like single-sensed plant etc.<sup>7</sup>

( c ) *Dhammapada* : The followers of Non-violence neither cause pain to some one nor provoke anybody to do so.<sup>8</sup>

### **The Philosophy of Friendship ( Maitrī-Bhāvanā )**

*Tevijja sutta* : Buddha while guiding Vaśiṣṭha mānava towards Brahmās place ( *Brahmāloka* ) has emphasized on the following<sup>9</sup> :

- ( i ) Friendship or Love ( *Maitrī Bhāvanā* ),
- ( ii ) Compassions ( *Karuṇā* ),
- ( iii ) Cheerfulness ( *Muditā* ),
- ( iv ) Impartiality ( *Upekṣā* ).

A bhikkhu having friendly sentiment for all beings passes through different sides. He being without any ill-will comes into contact with all persons. The deeds done with friendly mood remain for ever.

*Samyutta Nikāya* : The friendship is important because it

has power to save a man from all sides. The family in which number of the female members is found lesser than that of the male members, lives fearlessly from thieves and robbers. The spear which is itself sharp, is never pierced by other things. In the similar way the man who has awakened himself with friendship ( *Maitrī Bhāvanā* ) suffers fear neither from a being nor at a place. Therefore Buddha has told to Bhikṣu : ‘*maitrīceto vimukti.*’

In the *Kalyāṇamittasutta*, the *Kalyāṇa mitratā*, i.e., friendship for having good ( *Kalyāṇa* ) has been considered as an anticipation of liberation. As the redness of the sky presumes the arrival of Sun, so the *Kalyāṇa mitratā* is a sign of being benefitted by the Eight-fold-path. Buddha again has addressed a Buddhist saint :

“Bhikkhu ! *Kalyāṇa mitratā* is the only means which can help a man to attain the advantage of the *Aṣṭāṅga-Mārga*.<sup>10</sup>”

### **Brahma-Vihāra**

The *Mittasutta* of *Suttanipāta* also focuses light upon friendship. The friendship with all beings is the *Brahma-vihāra*, which may be compared with the Brahmic Intuition ( *Brahma-jñāna* ) or the Brahmic-perception ( *Brahma-sākṣātkāra* ) of the Vedic philosophy. The person who wants to attain peace, should be very clean ( *Ṛju* ) with sweet tone ( *Priya-vacana* ) and benevolence. He should be simple and satisfied. He should not do even a single mistake so that wisemen may blaim him. He should wish for pleasure and good of all. He should think always that all beings either mobile or immobile; big or great, middle or small; atom like small or heavy; perceived or non-perceived far or near; originated or likely to be born may have a happy life. He should treat all beings as a mother behaves with her son. After being free from enmity he should be careful about the safety of all beings living up, down and vertical. He should love all beings while he is standing or moving or sitting or sleeping or walking, in all the stages he passes through. This is the *Brahma-vihāra*. By adopting this *Brahma-vihāra* and being free from sex ( *Vāsanā* ) and desire ( *Kāmanā* ) a saint can obtain *Nirvāṇa*.<sup>11</sup>

*“ahimsaka ye munayo niccama kāyena samvutā.  
te yanti accyutam ihāṇaṁ yalṭha gantvā na socare.”*<sup>12</sup>

The person who leads his life with Non-violence and Restraint obtains that unfallable seat which never causes any sort of trouble for him.

### **Christain Philosophy and Non-violence**

Jesus Christ is known as the founder of Christian tradition. This philosophy may be seen in its literatures :

1. Gospels and the writings of New Testament,
2. Apocrypha,
3. Works of Philo,
4. Book Enoch,
5. Book of Daniel.

Christian philosophy is a Monotheistic philosophy. God is the Ultimate Reality and the Supreme Father. All human beings are His children. Non-violence has been placed in the centre of this philosophy. This philosophy consists of two theories :

- ( i ) Theory of Love,
- ( ii ) Theory of Non-opposition.

The theory of love is supported by the theory of Non-opposition. Where there is opposition there cannot be love and where there is absence of love there can not be Non-violence. So Christ has propounded this theory in the following way :

Theory of Love — According to Christ love may be maintain on three levels :

- ( i ) Love with God,
- ( ii ) Love with Neighbours,
- ( iii ) Love with Enemy.

One should love God, the Father of fathers, Who has created the whole universe. The Father will be loved when His children will be loved. So, through the love with all beings God can be loved. Christ, while emphasizing the importance of love has expressed his ideology in the following way :

“Do not pay attention to the theory which advises you to love your neighbours and to hate your foe rather, do what I say

“Ye have heard that it hath been said

Thou shalt love thy neighbour, and hate thine enemy. 43.

But I say unto you, Love your enemies, bless them that curse you do good to them that hate you, and pray for them which despitefully use you, and persecute you.”<sup>44. 13</sup>

Then you will be a true child of your Father, i.e., God who lives in heaven and orders the Sun to focus his rays and Cloud to rain equally for both the man having good nature and also the man having bad nature. The love with common people is the love with God. The love is without any control and limitation.<sup>14</sup> Actually love is Non-violence and Non-violence is love, neither love can be imagined without love nor love can be imagined without Non-violence.

Brotherly love — In the letter from St. Paul to Romio, the Brotherly love has been presented in the following way :

“Your love should be open hearted. You love virtues and hate vices. You love one another whole heartedly like real brother. You should treat one another as greater than ownself. As far as possible you should creat harmony among yourselves.”<sup>15</sup>

Do not be grateful to anybody for any thing except Brotherly love. The person who loves other is known as the follower of all religious codes.<sup>16</sup>

In the letter from St. Paul to Corinthians the Brotherly Love has been discovered by the name of Charity.

“Though I speak with tongues of men and of angles, and have not charity, I am become as sounding brass, or a tinkling cymbals.

And though I have the gift of prophecy and understand all mysteries and all knowledge, and though I have all faith so that I remove mountains, and have not charity. I am nothing.

And though I bestow all my goods to feed the poor and

though I give my body to be burned and have not charity, it profiteth me nothing.<sup>17</sup>

I may speak in the human language and in the language of angles but in the absence of love I am like a big gong and cymbal which simply jingle. If I am blessed to predict, I know all mysterious things; I possess all sorts of knowledge; I am so confident that I can remove even the great mountain but these all in vain, if I have no love. As charity I may expend all of my property, I may offer even my body to be burned, but in the absence of love I cannot achieve anything.

“Love possesses tolerance and kindness

Love neither envies nor over estimates nor shows vanity.

Love never ill-treats.

Love is not selfish.

Love neither annoys nor accounts for the bad names,

Love enjoys pleasure for own good conduct not for other's sins.

( Love ) Beareth all things, believeth all things,  
hopeth all things, endureth all things.7.”<sup>18</sup>

Prediction will vanish, language will be silent, knowledge will finish but love will never come to its end. For, our predictions and knowledge are incomplete and when the completeness will be achieved the incompleteness will be gone.<sup>19</sup>

Theory of Non-opposition — Theory of love is strengthened by the theory of Non-opposition. So Christ has told :

“Therefore, if then bring thy gift to the altar, and there rememberest that thy brother hath ought against thee leave there thy gift before the altar, and go thy way first be reconciled to thy brother and then come and after thy gift.”<sup>20</sup>

Suppose a person is ready to perform some religious activity but his brother is angry with him for the performance to be held. Then he should take first his brother in confidence before that worship, otherwise their love may be disturbed.



Again Christ says in the favour of the Non-opposition theory

“You have heard that it hath been said

An eye for an eye, and a tooth for a tooth. 38.

But I say unto you, That ye resist not evil :

But who so ever shall smite thee on thy right

Cheek, turn to him the other also.

And if any man will see thee at the law and take

away thy coat let him have thy cloak also. 40.

And whosoever shall compel thee to go a mile,

go with him twain. 41.”<sup>21</sup>

‘Tit for Tat’ is totally wrong. The problem cannot be solved by destroying eye for eye and tooth for tooth. Even peace cannot be felt as a result of such activity. Thus you do not oppose any misbehaviour happend against you. If somebody slaps on your one cheek, present the other to him. If some one wants to take your coat by force provide him your cloak also. If some person comples you to accompany with him for a mile, go with him up to the distance of two miles.

In this way theory of Non-violence has been supported through the principles of Love and Non-oppositions.

### Islamic Philosophy and Non-violence

Islamic Philosophy is a monotheistic philosophy, which depends on — 1. The *Qurāna*, 2. The *Sunnā*, 3. The *Jima*, 4. The *Qias* etc. In this philosophy *Allāha* or *Khudā* has been known as the ultimate reality. The word *Khudā* has got its origin in the word ‘Khud’ which means ‘ownself’, therefore ‘*Khudā*’ means that who is self-born, like the ‘*Svayambhū*’ of the Vedic tradition. He is addressed as *Rahamāna*, i.e., One who possesses kindness.

“Praise belongs to God, the Lord of the worlds  
the merciful, the compassionate, the ruler  
of the day of judgement. Thee we  
serve and thee we ask for aid.” 22.

The word 'Islam' also means 'peace', 'safety' and freedom or liberation. When a person says, as salutation, '*As-salāma-alekuma*', he wishes well for the peaceful life of the man whom he salutes. These all things are in the favour of Non-violence. Moreover in Islam theories of charity and kindness have been discussed.

**Theory of Charity** — As depicted in the *Qurāna*, charity may be considered right and proper when that is performed without any hesitation. Charity should not be known as a good thing unless and untill it is free from any sort of painful activity. It is better to talk lovingly to a person and to excuse him, than giving him anything with heavy heart.

**Theory of Kindness** — *Allāha* is the symbol of kindness and he has ordered that no being should be killed without any proper cause. If some body kills a man without any proper cause, according to Islamic faith, the person killed may be the killer of his killer. But this he can do with the help of heavenly rule.

Now the question may be raised here — what is the proper cause for killing a being ? To solve this problem one can see that page on which Maudidi has discussed the rights of *Khudā*, soul and human beings and giving them the right of utilizing other beings for there different purposes. But they are not permitted to misuse them. Human beings may utilize them for their food but they are not permitted to kill other beings ( animals ) for their recreation. Moreover, they should be killed through '*Zabh*' so that they will suffer at least. In this tradition killing of futile animals is allowed though ill-feeding, animals riding, using for carrying goods and keeping them in cages are boycotted. Islamic philosophy has prohibited even for cutting trees because they give fruits.<sup>23</sup>

It is astonishing enough that *Khudā* being so kind of prohibiting the ruin of a tree has permitted human beings to kill animals for their proper needs. He can feel the pangs of hunger of an animal's belly, but he does not feel the pain caused by their slaughterings, to them.

## Contemporary Thinkers and Non-violence

Thoreau, Ruskin, Tolstoy, Mahātma Gāndhī, Bertrand Russell and Martin Luther King are well known among contemporary thinkers who have paid attention towards Non-violence. They all except Bertrand Russell are socio-political thinkers.

**Henry David Thoreau** — Henry David Thoreau an American anarchist has accepted that man is good by his nature, so in every situation he should do that which is decided by his soul. The person who causes banefaction should be co-operated and the man who causes harm should never be co-operated. Same is the case with institutions. He has introduced Civil-disobedience in his philosophy, which has influenced M. K. Gandhi. According to Thoreau a democratic society should be considered as an ideal society. But unlike Gandhi he has favoured even the injurious-revolution against American Government.

**John Ruskin** — John Ruskin is the author of that famous book '*Unto the Last*' which has very much influenced Mahatma Gandhi. The name '*Unto the Last*' has been translated as '*Antyodaya*' in Hindi. It means 'development upto the last number or the betterment upto the last member'. But Mahatma Gandhi being impressed by this philosophy has followed it in the name of *Sarvodaya*. The following three principles have been discussed in '*Unto the Last*' for advocating the case of Non-violence.

( i ) The individual good lies in universal good.

( ii ) All have equal rights of earning livelihoods by their own professions. Therefore, all professions either of a pleader or of a barber have equal values.<sup>24</sup>

( iii ) A laborious life, i.e., the life of a farmer or the life of a labourer, is the proper human life.

As Ruskin has asserted Soul is the ultimate reality. Man is good by his nature. Character deserves more value than intellect. The social orientation is better than the political reformation. The political and economic policies must be adopted with morality. The

big machines should be utilized for the freedom of a society not for its slavery. The capitalists should behave with his labours just as a wise father treats lovingly with all of his children or the family members. Nobody should be revengeful. A labour should never cooperate in weapon-manufacturing.<sup>25</sup>

**Tolstoy** — Tolstoy has propounded '*Christian Anarchism*' which is the practical approach of '*Sermon on Mountain*' to the modern political and social problems. He has accepted Christ's theory of love and he also takes it as a complete means for solving all social, political and other problems of human life.

**Theory of Love** : According to Tolstoy there are two things concerning non-violence which may be understood deeply and should be applied on the basis of Love.

- ( i ) Injurious Non-opposition,
- ( ii ) Non-injurious, Non-co-operation.

( i ) Injurious Non-opposition : Theory of Non-opposition has been introduced formely by Christ. Tolstoy has also agreed with Christ's principle of Non-opposition which has been discussed on the last pages. But he has interpreted that in his own way. Suppose some one wants to take my coat by force and I surrender myself to him by giving him my coat and cloak also. This is Non-opposition but this may be remarked as injury, if I give him my coat and cloak due to his threatening. This is injurious Non-opposition. So to be free from injury. I should offer my things to the person who is demanding for, in the capacity of love not in that of fear and frightening.

( ii ) Non-injurious Non-Cooperation : The non-injurious non-cooperation is almost the same civil disobedience of Thoreau which has been named as *Satyāgraha* by Mahatma Gandhi. As this principle states, one should boycott co-operation no doubt, but with civility, not violently.

Moreover, Tolstoy is of opinion that no being should be forced to do anything against his will and this is the basis of his theory of Non-violence. In his letter to Mahatma Gandhi he has

written

“The denial of all sorts of violence means to follow the path of unbiased love. Love is the highest and the only code of life. In other words it is an endeavour towards the union of all human souls so that they may behave gently with one another. The application of force never harmonizes with love. As soon as the force is accepted the love vanishes away.<sup>26</sup>

So, Tolstoy has criticized Christian civilization which on the one side tries to follow the path of love or the path of Non-violence and on the other it permits the use of force.

**Mahatma Gandhi** — Mahatma Gandhi, one of the contemporary Indian philosophers is known as most prominent proponent of non-violence of his time. In his philosophy Non-violence is not limited only to metaphysics, religion and ethics but it has been extended upto the social, political and economic thinkings. Non-violence has been flourished equally in Gandhi's thought as well as in his practical life. He has adopted it as the only weapon for fighting against British-Government, in order to achieve India's freedom.

**God, Truth and Ahimsā** — God, Truth and *Ahimsā* are the basic constituents of the Gandhian philosophy. Whatever may be the problem the Gandhian philosophy gets its solution through these three. Gandhiji has accepted God as truth and also truth as God. So many times he has said — God is Truth and Truth is God. God or Truth may be approached through Non-violence. Therefore Truth is the end of human life while Non-violence is its means. Gandhiji while removing the doubt concerning levels of Truth and *Ahimsā* has said very clearly —

“*Ahimsā* is not the goal. Truth is goal. But we have no means of realizing truth in human relationships except through the practice of *Ahimsā*. A steadfast pursuit of *Ahimsā* as inevitably bound to truth not so violence. That is why I swear by *Ahimsā*. Truth came naturally to me. *Ahimsā* I acquired after a struggle. But *Ahimsā* being the means we are naturally more concerned with it in our

every day life. It is *Ahimsā*, therefore, that our masses have to be educated in. Education in truth follows from it as a natural end.<sup>27</sup>

In 'A talk on Non-violence' Gandhiji has said that *Ahimsā* is not the a form of direct action but it is the only form of that. Non-violence is meaningless when it is not applied as direct action. It must have direct and active expression. It is the greatest and the activist force in the world. One cannot be passively non-violent. In fact non-violence is a term I had coin in order to bring out the root meaning of *Ahimsā*. In spite of the negative particle 'non', it is no negative force.<sup>28</sup> Mahatma Gandhi has agreed with the sayings of ancient seers that one can achieve nothing through strife and violence, rather through *Ahimsā* he can fulfil his destiny and duty to his fellow creatures. For, non-violence is a force which is more positive than electricity and more powerful even than ether. In the centre of Non-violence there is a force which is self active.<sup>29</sup>

According to Mahatma Gandhi following are the axioms of non-violence :

( a ) Non-violence implies as complete self-purification as humanly possible.

( b ) Man for man the strength of Non-violence is in exact proportion to the ability, not the will, of the non-violent person to inflict violence.

( c ) Non-violence is without exception superior to violence, i.e., the power at the disposal of a non-violent person is always greater than he would have if he was violent.

( d ) There is no such thing as defeat in Non-violence, the end of violence is surest defeat.

( e ) The ultimate end of Non-violence is surest victory if such term may be used of non-violence. In reality, where there is no sense of defeat, there is no sense of victory.<sup>30</sup>

Moreover Non-violence is all-pervasive because one cannot be non-violent about one activity of his own and violent about others. It possesses nothing therefore it possesses everything because it

is universal. Possession makes limitations. So a thing without any possession or limitation may be considered beneficial to all. Though, it is the law of human race it never avails to him who does not have faith in God. Non-violence cannot be practised without sacrifice. So either individual or nation must be ready to sacrifice all things excepts honour. "Non violence is that sort of power which can be achieved by all children, youngmen and women provided they believe in God and love for all mankind."

Non-violence affords the fullest protection to self-respect and sense of honour, but not always to possession of land or movable property, though its habitual practice does provide a better bulwark than the possession of armed men to defend them. Non-violence in the very nature of things, is of no assistance in the defence of ill-gotten gains and immoral acts.<sup>31</sup>

As Gandhiji asserts self suppression is often needed for moving on the path of truth and Non-violence but it never prescribes meek submission to the evil doers. The way of the lord is for the Braves not for the Coward.<sup>32</sup>

**Bertrand Russell** — Bertrand Russell a prominent contemporary western philosopher has advocated theory of Non-violence by analysing human motives and boycotting war. As he has interpreted there are two types of human motives : ( i ) Possessive or collective and ( ii ) Creative .

( i ) Possessive or collective motive: It is human nature that a man wants to lead a happy life for which he tries to possess all means of pleasure. Sometimes he occupies much more than what he actually needs. He collects materials not for his ownself but also for his family members and coming generations. This way of increasing desires creates clash and conflict with others, because means are always limited and ends or desires are ever unlimited. Ultimately violence takes place.

( ii ) Creative motive : Another motive of man is to create something. By his scientific approach man creates many instruments

which make human life smooth. He composes poems, writes stories, novels, dramas, etc. He presents various beautiful paintings. These all provide pleasure to human society and because there is no limitation there is no clash. A poem may be read openly and whole heartedly by all, thus the problem of violence does not arise here.

**Boycott of War** : War takes place among different nations due to their possessive motive. When a nation wants to extend its area, it attacks on its neighbour-country, which results into war. According to Bertrand Russell war must be boycotted, because there are following reasons :

( i ) When two fighting nations make bombard on each other several innocent persons are killed.

( ii ) Generally young people are sent in the battle-field and they are gunned down in full bloom of their lives. A common man leads a long life and he presents various creative values for human life. But the man who is killed in the battlefield does nothing like this. In the case of being alive he would have done many things for the betterment of human life.

( iii ) All plans and projects are hampered due to economic crisis and disturbances. Governments expend their money and materials on war and other needs and necessities are neglected.

So Bertrand Russell opines to boycott war by neglecting the possessive motive and giving importance to the creative motive.

**Martin Luther King** — Martin Luther King is known as American Gandhi. Like Mahatma Gandhi he has accepted non-violence as the only weapon for obtaining freedom of Nigro-society. He is respected as the symbol of humanity. He lived for the cause of humanity and died also for the same. In December 1955, when he was only 29 years old was elected as the head of a small civic group in Alabama town. But when he died in 1968, he was a well-known leader of the Southern-Christian Leadership Conference.

Just after being elected as the President of the Montgomery Improvement Association, Martin Luther King continued to get



threatening from his opponents and that caused him so much disturbed that he began to keep gun with him. But very soon he came to feel the contradiction between a weapon like gun and the leader of a Non-violence movement. For any weapon represents violence. He thought over the situation and realized that the quality and not longevity was the most important consideration for judging the worth of an individual.<sup>33</sup>

Martin Luther King while delivering a lecture 'Let us be Dissatisfied' has inspired his fellowmen to struggle for the enhancement of the Nigro-society through Non-violence and love.

**Violence and Non-violence :** According M. L. King, through violence one can murder a murderer but he cannot murder murder. Through violence one can murder a liar but he cannot establish truth. Through violence one can murder a hater but he cannot murder hate. Darkness cannot remove darkness. Only light can put out darkness. So, Non-violence is the only remedy for social, political and economic developments. He, while clarifying his own position says — "I am concerned about justice, I am concerned about brotherhood, I am concerned about truth. And when one is concerned about these, he can never advocate violence."<sup>34</sup>

**Love :** Love should not be considered as something sentimental. It is much more deeper than emotional bosh. There are three words — 'eros', 'philia' and 'agape' for love in the Greek New Testament. But 'agape' is the overflowing love. It is operated in the human heart by God. At this level, we love men not because we like them, nor because their ways appeal to us, nor even because they possess some type of divine spark; we love every man because God loves. At this level, we love the person who does an evil deed although we hate the deed that he does.<sup>35</sup>

**Love and Power :** Concepts of love and power are known generally as contradictions. Nietzsche has refuted the theory of love introduced by Christian theologians. In the same way Christian theologians have abused Nietzsche's philosophy of the will power. But as

Martin Luther King has asserted — “What is needed is a realization that power without love is reckless and abusive and love without power is sentimental and anaemic.”<sup>36</sup> The love implementing the demands of justice is the best position of power and similarly removal of all things coming against love is the best position of justice. Therefore love and power cannot stand against each other.

A Man Without Love : Martin Luther King having strong faith in God and godly principles presented in the Holy Bible, has accepted that one can do nothing without love. A man may have good language, power of influential speech, all sorts of knowledge, but without love these all are useless. Even charity and death of a martyr can have no meaning in the absence of love. So one should love other persons after feeling that all are parts of one another. He should love even his enemies.

Forgiveness : Ignoring or putting a false level on the evil does not present forgiveness. In true sense forgiveness creates a healthy atmosphere for a new beginning. “Forgiveness means reconciliation, a coming together again. Without this no man can love his enemies.”<sup>37</sup>

In this way Martin Luther King has applied the principle of non-violence in all spheres of human life.

### **Theory of Non-violence**

Now after going through various views of eminent scholars and deep thinkers, I am in a position to say that theory of non-violence is a cohesion of the following doctrines —

- ( i ) Doctrine of entirety or Wholeness ( *Sampūrṇatā* ),
- ( ii ) Doctrine of Equality ( *Samatva* ),
- ( iii ) Doctrine of Oneness or Non-dual ( *Ekatva* or *Advaita* ),
- ( iv ) Doctrine of Universality ( *Sārviktā* ),
- ( v ) Doctrine of Restraint ( *Samyama* ).

( i ) Doctrine of Entirety or Wholeness ( *Sampūrṇatā* ) : Gaṇādhīpati Śrī Tulasījī a world renowned Jaina saint and thinker, while presenting the metaphysical interpretation of Non-violence,

has said that it is the feeling of existence ( *sat* ) consciousness ( *cit* ) and bliss ( *ānanda* )<sup>38</sup>, which is very near to the Upaniṣadic interpretation of *Brahma*. Probably, he wants to provide the same status of entirely to Non-violence which has been provided to *Brahma*. Moreover, he has stated that Non-violence is restraint, equality and friendship with all beings. It is restricted neither to a family nor to a society, nor even to a nation, because its circumference is so wide and open that all beings enjoy their lives pleasantly into it.<sup>39</sup>

Violence causes destruction. But non-violence has creative value. Creation proves existence and existence assimilates consciousness and bliss. A well-known western philosopher Jean Paul Sartra of existentialism has propounded, “I exist therefore I think.”

It means consciousness is proved by existence. Because Non-violence has creative value it holds existence which is proved for having consciousness. Bliss may be found where there is consciousness. Without consciousness, bliss cannot be experienced. As Bertrand Russell has assigned there are two types of human motives — ( i ) Possessive or collective and ( ii ) Creative. The possessive motive makes a man self-confined. He wants to collect different means of comfort for himself and for his nears and dears. That is why he is provoked to violate those rules and regulations which provide pleasure and peace to the human society. But the creative motive inspires a man to produce those things which may be useful for all and cannot be put under an individual ownership. So due to its creative value Non-violence holds existence, consciousness and bliss in itself.

Another Jaina saint Śrī Ganeśa Muniḥ has declared very frankly —

“Where there is non-violence, there is life,  
Where there is absence of non-violence, there is also  
absence of life.

The non-violence is existing since the creation of beings.  
The Existence of beings will remain safe and sound as long

as the existence of non-violence will be seen in the creation.”<sup>40</sup>

So Non-violence is a whole or complete ( *Sampūrṇa* ) one.

( ii ) The Doctrine of Equality ( *Samatva* ) : All beings are equal because fundamentally they have their equal constructions. All beings consist of two elements — Soul ( *Ātmā* ) and Body ( *Deha* ) in which soul dwells.

Soul can experience all pains and pleasures because it is conscious. The body is material. There have been accepted five types of material elements — Earth ( *Pṛthvī* ), Water ( *Jala* ), Fire ( *Agni* ), Air ( *Vāyu* ) and Ether or Sky ( *Ākāśa* ). Though bodies, due to the karmika influences, are seen in different shapes and sizes, souls living in them have feelings of various troubles in the same way. They feel pains. They feel pleasures. The pain is painful for all and in the same way the pleasure is pleasant for all. It cannot be accepted that a pain is painful for one and pleasant for other. The pleasure is pleasant for one and painful for other. All beings feel pain as pain and pleasure as pleasure. Therefore in the *Sūtrakṛtāṅga* it has been instructed :

*savvehiṃ aṇujuttihiṃ, matiṃ paḍilehiyā.*

*savve akkaṃtadukhā ya, ato savve na hiṃsayā. 9.*

*eyañ khu ṇāṇiṇo sāraṃ, jaṃ na hiṃsaḥ kañcana.<sup>41</sup>*

*ahimsā samyamam ceva, etāvamtaṃ vijāṇiyā. 10.*

Here four valuable ideas have been expressed in support of Non-violence :

( i ) The person who is wise should come to know the beinghood of beings.

( ii ) He should know that trouble is painful for all.

( iii ) After knowing these facts he should never injure anybody.

( iv ) This is the most valuable wisdom.

The beinghood ( *Jīvapanā* ) of a being lies in its construction and nature. One can understand his own feelings of pain and pleasure and on this basis he may infer the feelings of other beings, be-

cause they all have the similar constructions. To be more clear, a man can understand that other beings also have the feeling of pain as he himself feels. Therefore, he should not harm any beings.

( iii ) The Doctrine of Oneness or Non-duality ( *Ekatva* or *Advaita* ) : The other doctrine which supplements the theory of non-violence is the principle of oneness. The theory of non-dualism ( *Advaitavāda* ) is an Upaniṣadic doctrine which occupies a prominent place in Indian Philosophy. In this theory, *Brahma*, the ultimate reality is considered to be immanent in the whole universe because He transforms Himself in the form of universe. So all things found in this universe are the same *Brahma*. This is known as absolutism. But so far the theory of Non-violence is concerned Jainism tries to strengthen it even on the basis of Non-dualism though it is famous for its non-absolutism or relativism ( *Sāpekṣatāvadā* ). *Ācārāṅga-sūtra* expresses :

*tumaṁsi nāma taṁ ceva jaṁ haṁtavvaṁ ti mannaṁsi.*  
*tumaṁsi nāma taṁ ceva jaṁ ajjaveyavvaṁ ti mannaṁsi.*  
*tumaṁsi nāma taṁ ceva jaṁ pariyāvevavvaṁ ti mannaṁsi.*<sup>42</sup>

The person whom you want to kill is nobody but you are. The person whom you want to govern is nobody, but you are. The person whom you want to torture is nobody but you are.

It is seen also in *Sūtrakṛtāṅga* — “*te ātāo pāsai savvaloe.*”<sup>43</sup>

The wiseman sees all beings in himself. The same thought may be seen in the Vedic literature where it has been said — “The wiseman is he who sees himself in other beings and other beings in himself.”<sup>44</sup>

This is because he treats all beings the same. A well known Jaina saint and thinker Upadhyaya Amara Munijee has affirmed that the non dual idea is the basis of Non-violence.<sup>45</sup>

( iv ) Doctrine of Universality ( *Sārvikatā* ) : Theory of non-violence is never confined to an individual, it is for all. It has been depicted in *Praśnavyākaraṇa-sūtra* :

*“ahimsā tasa thāvara savvabhūyakhemaṅkarī.  
savvapāṇā na hīliyavvā, na nindiyavvā.”*<sup>46</sup>

Non-violence causes good for all mobiles and immobiles. No body should be neglected and condemned.

*Uttarādhyayana Sūtra*, in order to support the universal concept of non-violence has stated in the following way :

*“metti bhūesukappae.”*

Behave friendly with all beings.

In the Buddhist philosophy also approval of the universality of Non-violence has been declared.

*“savve sattā averīno honta mā verīno.  
sukhīno hontu, mā dukkhīno.”*<sup>47</sup>

All beings should be free from enmity, no body should suffer from that ( enmity ). All beings should be happy, nobody should suffer from any sort of sorrow.

Ruskin, a great supporter of Non-violence, has also assigned that the good of one lies in the good of all.<sup>48</sup>

( v ) Doctrine of Restraint ( *Samyama* ) : Self-control is necessary for Non-violence. It is impossible to move on the path of non-violence, without self restraint. There are five great austerities ( *Pañca Mahāvratā* ) — Non-violence, ( *Ahimsā* ), Truth ( *Satya* ), Non-stealing ( *Acaurya* ), Celibacy ( *Brahmacarya* ) and Non-possessiveness ( *Aparigraha* ). These austerities have been accepted by all religions but in Jainism Non-violence has been placed on the top and the remaining others have been considered as its supporters. It is a great devotion. *Ācārāṅga-sūtra* presents it as Un-Arm ( *Aśāstra* ).

*“atthi sattham pareṇa param,  
natthi asattham pareṇa param.”*<sup>49</sup>

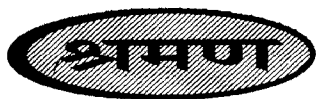
There are various arms surpassing one another but there is no Un-Arm like Non-violence. It is the only Un-Arm, which can do much more than that what can be done by arms. A lot of power it possesses, because it is a great devotion a great penance.

## References

1. *The Mahābhārata*, 189/6.
2. *Yajurveda*, 36. 17.
3. *Indian Philosophy*, Dr. C. D. Sharma, p. 233.
4. *dukhatrayābhīghātāja jijñāsā tadapaghātake hetī. dṛṣṭe sāpārthā cennaikāntātyantoabhāvād.*  
— *Sāṅkhya-kārikā*, 1
5. *anyayogavyavacchedadvātrimśikā*, 22.
6. *Saṃyuttanikāya*, Hindi translation, Bhikṣu Jagadīśa Kāśyapa & Bhikṣu Dharmaraksita, part I, p. 71.
7. *Vinayapiṭaka*, Hindi translation, Rāhula Sāṅkrtyāyana, p. 207.
8. *Dhammapada*, 25. 9-10.
9. *Dīghanikāya*, pp. 90-92. Also see *Jaina Dharma men Ahimsā*, Dr. B. N. Sinha, pp. 62-63.
10. *Saṃyuttanikāya*, part II, pp. 633-635.
11. *Suttanipāta*, Uragavagga, Mettasutta.
12. *Dhammapada*, Kodhavagga ?
13. St. Mathew-5, *Holy Bible*.
14. G. W. R., p. 172.
15. *Holy Bible*, Tr. V. Bulke, N. T., p. 246.
16. *Ibid*, p. 247.
17. *Holy Bible*, Corinthians, 2/13.
18. *Ibid*, 7/13.
19. *Ibid*, 8/13.
20. *Ibid*, Mathew, 5.
21. *Holy Bible*, Maithew, 5.
22. *The Quran*, The Opening Chapter ( I Mecca ).
23. *Towards Understanding Islam*, Sayyid Abul A'le Maudidi.
24. *Ātma Kathā*, M. K. Gandhi, Part 4, Chapter 16.
25. *Sarvodaya Tattva Darśana*, Gopinath Dhavan, p. 22.
26. Tolstoy, *Essays and Letters*, pp. 435-436.

27. M. K. Gandhi, Non-violence in Peace and War, Vol. II, p. 104.
28. *Ibid*, Vol. I, p. 13.
29. *Ibid*, Vol. I, p. 113.
30. *Ibid*, Vol. I, p. 111.
31. *Ibid*, p. 119.
32. *Ibid*, Vol II, p. 57.
33. Gandhi Marga, 47, p. 316.
34. *Ibid*, p. 215.
35. *Ibid*, p. 280.
36. *Ibid*, p. 222.
37. *Ibid*, p. 239.
38. *Eka Būnda Eka Sāgara*, Editor Samaṇī Kusuma Prajñā, Vol. I, p. 257 ( Saying, 3038 ).
39. *Ahimsā Aura Viśva Śānti*, Śrīmad Tulasīramjī Mahārāja, Sri Jaina Śvetāmbara Terāpanthī Mahāsabhā, 201 Harison Road, Calcutta.
40. *Ahimsā kī Bolatī Mīnāren*, p. 15.
41. *Sūtrakṛtāṅga*, Ed. A. Ojhā, First Śruta., Part III, Adhyayana II, p. 50, p. 51.
42. *Ācārāṅga*, 1/5/5.
43. *Sūtrakṛtāṅga*, 1/12/18.
44. *yastu sarvāṇi bhūtāni, ātmanyevānupaśyati.*  
*sarvabhūteṣu cātmānaṁ, tato na vijugupsate.*  
— *Īśāvāsyaopaniṣad*, 6
45. *Sūkti Trivenī*, p. 23 ( Jaina Dhārā ).
46. *Praśnavyākaraṇa-sūtra*, 2/1.
47. *Patisambhidāmagga*, 1/1/1/66.
48. *Sarvodava Tattva Darśana*, Gopinath, p. 20.
49. *Ācārāṅga-sūtra*, 1/4/1.





## साहित्य समीक्षा

पुस्तक : चिन्तन की मनोभूमि, लेखक : उपाध्याय अमरमुनि, सम्पादक : शास्त्री पं० विजयमुनि, प्रकाशक : सन्मति ज्ञानपीठ, लोहामण्डी, आगरा — २, पृष्ठ : ५३९, मूल्य : रु० १२५ मात्र।

चिन्तन की मनोभूमि को सन् १९७० में देखने का सुअवसर प्राप्त हुआ था, जब इसका प्रथम संस्करण प्रकाशित हुआ था। पुनः उसकी समालोचना लिखने के लिए मुझे कहा गया है, यह एक विचित्र संयोग है। इस पुस्तक में उपाध्याय अमरमुनि जी के सारगर्भित निबन्धों को संकलित किया गया है। समकालीन जैन दार्शनिकों की प्रथम पंक्ति में उपाध्याय अमरमुनि जी का नाम आता है। उनकी ज्ञान-विधाएँ जैन धर्म-दर्शन तक ही सीमित नहीं हैं, बल्कि भारतीय ज्ञान-विज्ञान के विविध क्षेत्रों में भी उनकी गहरी पैठ देखी जाती है। वे रूढ़िवादिता से दूर एक प्रगतिशील चिन्तक थे। उनकी प्रगतिवादिता ने जैन समाज को नई दिशा दी है, जो उनकी रचनाओं से ज्ञात होता है, किन्तु सम्प्रदायगत खींचातानी ने उनके पैर भी खींचने से अपने को नहीं रोका। उपाध्याय पद पर ही उनका स्वर्गवास हुआ, किन्तु अपने जीवनकाल में अपनी विलक्षण सूझबूझ एवं उदार मानसिकता से उन्होंने कई सुयोग्य व्यक्तियों को आचार्य पदों पर आसीन किया। अंग्रेजी की यह कहावत उन पर शत-प्रतिशत लागू होती है — He was not a king but a kingmaker.

इस ग्रन्थ के प्रधानतः तीन विभाग हैं — १. दार्शनिक दृष्टिकोण, २. धार्मिक एवं आध्यात्मिक दृष्टिकोण तथा ३. सांस्कृतिक, सामाजिक एवं राजनीतिक दृष्टिकोण। प्रथम विभाग में जीव और जगत् : आधार एवं अस्तित्व, मन : एक सम्यक् विश्लेषण, आत्मा का विराट् रूप, अरिहन्तत्व : सिद्धान्त और स्वरूप, अवतारवाद-उत्तारवाद, जैन दर्शन की समन्वय-परम्परा, प्रमाणवाद, नयवाद आदि निबन्ध हैं। आत्मा का विराट् रूप बताते हुए उपाध्याय अमरमुनिजी ने 'एगे आया' के साथ-साथ 'एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति' तथा "सियाराम मय सब जगज्जानी। करऊँ प्रणाम जोरि जुग पानी।।" के भी उल्लेख किये हैं। यह उनकी उदारता एवं समन्वयात्मकता को सूचित करता है। दूसरे विभाग में धर्म : एक चिन्तन, भक्ति कर्म ज्ञान, धर्म तत्त्व, साधना मार्ग, जीवन में सुख का विकास, कल्याण का मार्ग, जैन संस्कृति की अमर देन — अहिंसा, अहिंसा — विश्व-शान्ति की आधारभूमि, सत्य का विराट् रूप, सर्वधर्म समन्वय आदि निबन्ध हैं। धर्म का

विवेचन करते हुए मुनिश्री ने आचार्य हरिभद्र के विचार से अपनी सहमति व्यक्त की है —

“कोई श्वेताम्बर हो, या दिगम्बर, जैन हो, या बौद्ध अथवा वैष्णव हो। ये कोई धर्म नहीं हैं, मुक्ति के मार्ग नहीं हैं। धर्म कोई दस हजार या दो हजार वर्ष के परम्परागत प्रचार का परिणाम नहीं है, वह तो एक अखण्ड शाश्वत और परिष्कृत विचार और हमारी विशुद्ध आन्तरिक चेतना है। मुक्ति उसे ही मिल सकती है जिसकी साधना समभाव से परिपूर्ण है।”

तीसरे विभाग में संस्कृति और सभ्यता, व्यक्ति और समाज, मानव जीवन की सफलता, समाज-सुधार, नारी जीवन का अस्तित्व, वर्तमान युग की ज्वलन्त माँग समानता राष्ट्रीय जागरण, विश्वकल्याण का चिरन्तन पथ — सेवा का पथ आदि निबन्ध हैं। उन निबन्धों के शीर्षकों से ही यह बोध हो जाता है कि उदारचेता उपाध्याय जी को सिर्फ अपने समाज ही नहीं बल्कि राष्ट्र और विश्व के कल्याण की चिन्ता थी। उन्होंने लिखा है—

“सिर्फ जैन दर्शन ही नहीं बल्कि भारतवर्ष का प्रत्येक दर्शन, प्रत्येक सम्प्रदाय और प्रत्येक परम्परा इस विचार पर एकमत हैं कि मानव-जीवन पवित्रता के आधार पर चलता है। मानव का ज्ञान पुरुषार्थ और पवित्रता की जितनी उच्च भूमि पर पहुँचा हुआ होता है, उसका विकास उतना ही उत्कृष्ट होता है।”

अहिंसा पर प्रकाश डालते हुए उन्होंने कहा है —

“अहिंसा की एक धारा रागात्मक भी है, जिसे हम समझने की भाषा में रागात्मक करुणा, स्नेह तथा प्रेम भी कह सकते हैं। उसी के आधार पर मनुष्य का पारिवारिक तथा सामाजिक जीवन टिका है।”

भगवान् और भक्त के सम्बन्ध में बताते हुए उपाध्याय अमरमुनिजी ने कहा है —

“भगवान् की विराट् चेतना का छोटा संस्करण ही भक्त है। बिन्दु और सिन्धु का अन्तर है। बिन्दु, बिन्दु है जरूर, पर उसमें सिन्धु समाया हुआ है। यदि बिन्दु नहीं है, तो फिर सिन्धु कहाँ से आएगा।”

पुस्तक में विचार की उत्कृष्टता तथा भाषा की सरलता है। विषय को प्रस्तुत करने की शैली रुचिवर्धक है। शास्त्री पं० विजयमुनि जी ने इसका सम्पादन किया है जिससे ‘सोने में सुगन्ध’ की बात चरितार्थ होती है। किन्तु खेद इस बात से है कि अब तक इस उच्चकोटि की रचना का दूसरा संस्करण ही निकल पाया है। कह नहीं सकता कि इसमें पाठकों की विषयग्राह्यता दोषी है अथवा व्यवस्थापकों की शिथिलता। पुस्तक की बाहरी रूपरेखा तथा मुद्रण आदि आकर्षक है।

— डॉ० बशिष्ठनारायण सिन्हा

**पुस्तक : कीर्ति स्तम्भ**, प्रकाशक : श्री दिगम्बर जैन समिति एवं सकल दिगम्बर जैन समाज, अजमेर, मूल्य : रु० १८५ मात्र।

प्रस्तुत रचना के पाँच खण्ड हैं। प्रथम खण्ड — आचार्य ज्ञानसागर प्रणीत वीरोदय-महाकाव्य का समीक्षात्मक अनुशीलन, द्वितीय खण्ड — चातुर्मास कीर्तिस्तम्भ १९९४, तृतीय खण्ड — दिगम्बर संस्कृति का एक उदीयमान नक्षत्र, चतुर्थ खण्ड — अजमेर के आस्था स्तम्भ तथा पंचम खण्ड — मुनि श्री सुधासागरजी महाराज का अजमेर में अभूतपूर्व चातुर्मास। इसमें प्रथम खण्ड प्रधान है। इस खण्ड में आचार्य ज्ञानसागर महाराज द्वारा रचे गये महाकाव्य वीरोदय के विभिन्न पक्षों पर समीक्षात्मक निबन्ध हैं जो वीरोदय पर ही आहूत संगोष्ठी में पढ़े गये थे। वीरोदय में विवेचित विभिन्न विषयों की समीक्षा विद्वानों ने अपने-अपने लेखों में की है। उस समीक्षात्मक निबन्धों की समीक्षा मुनिश्री सुधासागर जी ने की है और पुनः मेरे सामने इस रचना की समीक्षा करने की बात आ पड़ी है। यह तो समीक्षा दर समीक्षा की बात हो गयी। मुनिश्री के द्वारा की गयी समालोचनाएँ अपने आपमें पर्याप्त हैं क्योंकि उनमें विषयों के गुण-दोष दिखाने के साथ-साथ उनकी स्पष्टता भी प्रस्तुत की गई है और मुनिश्री के द्वारा की गई समीक्षा की समीक्षा की जाय तो न उसकी कोई उपयोगिता होगी और न कोई अर्थ।

हाँ, इतना मैं अवश्य कहूँगा कि निबन्धों को वर्गों में विभाजित करके रखा जाता तो अच्छा होता, जैसे दार्शनिक, धार्मिक, सामाजिक आदि, जिससे पाठकों को सुविधा होती। साथ ही यदि प्रथम खण्ड को बिल्कुल अलग छपा जाता तो और अच्छा होता। क्योंकि जो विद्वान इसे भेंट स्वरूप प्राप्त नहीं कर सकते वे आसानी से खरीद लेते। अन्य खण्ड भी विषयानुकूल सही और सुन्दर हैं।

रंग रूप की दृष्टि से ग्रन्थ बहुत ही आकर्षक है। इसके लिए प्रकाशक धन्यवाद के पात्र हैं।

— डॉ० बशिष्ठनारायण सिन्हा

**Book : Vaishali Institute Research Bulletin No. 9**, General Editor : Dr. Yugal Kishore Mishra, Research, Institute of Prakrit Jainlogy and Ahimsa, Basokund, Vaishali, Muzaffarpur ( Bihar ), 1994, p. 90.

प्रस्तुत रचना प्राकृत, जैनशास्त्र अहिंसा शोध संस्थान, वैशाली की शोध पत्रिका के रूप में सामने आई है किन्तु इसमें 'जगदीशचन्द्र माथुर व्याख्यानमाला' १९९३ के अन्तर्गत डॉ० श्री रंजन सूरिदेव द्वारा दिये गए व्याख्यानों का संकलन है। सम्पादकीय में डॉ० सूरिदेव को प्राकृत-संस्कृत-हिन्दी का धुरिकीर्तनीय मनीषी कहा गया है। किन्तु उनके व्याख्यानों से यह प्रमाणित होता है कि जैन दर्शन में भी उनकी अच्छी पैठ है। उन्होंने अपने व्याख्यान के प्रारम्भ में कहा है — "श्रमण-संस्कृति का दृष्टिकोण इसलिए उदात्त

है कि वह वैचारिक संकीर्णता का सर्वथा प्रत्याख्यान करता है।” इस उदारता को अहिंसा, अपरिग्रह, तथा अनेकान्त के विवेचनों से दर्शाने का भरपूर प्रयास किया गया है। ये सभी सिद्धान्त प्राचीन काल से चले आ रहे हैं। किन्तु व्याख्यानों में इन्हें आज की सामाजिक एवं राजनीतिक समस्याओं के समाधान के रूप में प्रस्तुत करके इनके सम-सामयिक महत्त्व को दिखाया गया है। अपने विचार की सम्पुष्टि के लिए विद्वान व्याख्याता ने आधुनिक चिन्तकों जैसे राष्ट्रकवि दिनकर, युवाचार्य महाप्रज्ञ, प्रो० महेन्द्र कुमार (न्यायाचार्य) आदि के मतों का उल्लेख किया है। मानव जीवन की जो भी समस्याएँ हैं उनके समाधान तभी मिल सकते हैं जब मानवजीवन के प्रमुख दो अंगों नारी और पुरुष के बीच समानता हो, सामंजस्यता हो। इसके लिए डॉ० सूरिदेव ने कहा है —

“निश्चय ही महावीर की नारी और पुरुष की समानता की बात वैचारिक स्तर पर हमें अपनी ऐतिहासिक भूलों को सुधारने की प्रेरणा देती है। खासकर चन्दनबाला के उपाख्यान से यह स्पष्ट है कि महावीर के विचार नारी को निर्भय और निःशंक होकर यन्त्रणा मुक्त जीवन जीने तथा अपना सही स्वरूप समझने में सहायता करते हैं। नारी न केवल मानसिक वरन् शारीरिक स्तर पर भी पुरुष के समकक्ष है और अपने पुरुषार्थ से वह पुरुष की तरह मोक्ष की भी अधिकारिणी हो सकती है।”

इस तरह यह संकलन बहुत ही महत्वपूर्ण है। इसके लिए डॉ० श्री रंजन सूरिदेव तो साधुवादार्ह हैं ही, डॉ० युगल किशोर मिश्र भी सम्पादन एवं व्याख्यान व्यवस्था के लिए बधाई के पात्र हैं। विश्वास है कि विद्वानों के द्वारा इस रचना का भरपूर स्वागत होगा।

— डॉ० बशिष्ठनारायण सिन्हा

**पुस्तक :** श्री परमात्म प्रकाश विधान, रचनाकार : राजमल पवैया, प्रकाशक : तारादेवी पवैया ग्रंथमाला, ४४ इब्राहीमपुरा, भोपाल - ४६२ ००१, पृष्ठ : ३८४, मूल्य : ३२ रुपये।

श्री परमात्म प्रकाश विधान के रचयिता श्री राजमल पवैया हैं। उन्होंने जैन धर्म-दर्शन से सम्बन्धित एक सौ से भी अधिक पुस्तकें लिखी हैं। ‘परमात्म प्रकाश विधान’ का मूल रूप ग्रन्थ ‘परमात्मा प्रकाश’ के नाम से जाना जाता है। इसकी रचना आचार्य योगीन्दु देव ने की थी जब उनके शिष्य मुनि प्रभाकर भट्ट ने परमात्म तत्त्व को विवेचित करने के लिए कहा था। अब तक की उपलब्ध अपभ्रंश रचनाओं में इसे सबसे प्राचीन माना जाता है। ग्रन्थ तीन अधिकारों में विभाजित है। प्रथम अधिकार में बहिरात्मा, अन्तरात्मा तथा परमात्मा को विश्लेषित किया गया है तथा दूसरे और तीसरे अध्यायों में मोक्ष, मोक्ष-फल और मोक्षमार्ग के विवेचन हैं। राजमल पवैया ने परमात्म प्रकाश को हिन्दी में छन्दबद्ध करके प्रस्तुत किया है —

“मिथ्यात्वी रागादि रूप परिणत बहिरात्मा।  
 बीतराग भावों से परिणत अंतरात्मा।  
 भाव द्रव्य नो कर्मों से विरहित परमात्मा।  
 देहमान जो मूढ़ वही प्राणी बहिरात्मा।।”

तत्त्वमीमांसी समस्याओं के समाधानों को सरल एवं सुरुचिपूर्ण भाषा में प्रस्तुत करके पवैया जी ने सामान्य पाठकों का बड़ा ही उपकार किया है। इससे विद्वानों को समुचित लाभ होगा। पुस्तक के प्रारम्भ में पूजनविधि का विवेचन भी बहुत उपयोगी है। इसके लिए श्री पवैयाजी को बधाई है। इसके प्रकाशक का प्रयास भी सराहनीय है। पुस्तक की छपाई साफ-सुथरी है। इससे सामान्य एवं विद्वान पाठक दोनों ही लाभान्वित होंगे और इसका स्वागत करेंगे।

— डॉ० बशिष्ठनारायण सिन्हा

**पुस्तक : प्रथम कर्मग्रंथ कर्म विपाक, लेखिका-सम्पादिका :** साध्वी श्री हर्षगुणाश्रीजी, प्रकाशक : श्री ऊँकार साहित्य निधि द्वारा पार्श्वभक्तिनगर, हाइवे, भीलही, बनास काँटा।

प्रथम कर्मग्रन्थ कर्मविपाक के रचयिता देवेन्द्रसूरि महाराज हैं। इसका विस्तार पूर्वक विवेचन साध्वी श्री हर्षगुणाश्रीजी ने किया है। इसके मुख्य विभाग हैं — कर्म बोधपीठिका, ज्ञानप्रकरण, कर्मविपाक, कर्मबन्धन के हेतु तथा प्रश्नोत्तरी। कर्मबोध पीठिका में कर्म सिद्धान्त का महत्त्व, कर्मसिद्धि, कर्मवाद, कर्मस्वरूप, जीव और कर्म का सम्बन्ध तथा कर्मसिद्धान्त की आवश्यकता। कर्मवाद शीर्षक के अन्तर्गत भारतीय दर्शन की शाखाओं में प्रतिपादित कर्म सम्बन्धी मान्यताओं के विवेचन हैं — जैसे बौद्ध दर्शन, योग दर्शन, सांख्य दर्शन, न्याय तथा वैशेषिक दर्शन एवं मीमांसा दर्शन। कर्मसिद्धान्त को स्पष्ट करने के लिए बहुत से रंग-बिरंगे चित्र दिये गये हैं — १. पुद्गल द्रव्य, २. कर्मग्रहणानी प्रक्रिया चित्र, ३. कर्म-प्रकार, चित्र, ४. ज्ञानावरणीय कर्म के भेद दर्शन चित्र, ५. दर्शनावरणीय कर्म के भेद-दर्शन चित्र, ६. अन्तरकरणानी प्रक्रिया दर्शन चित्र, ७. उपशम सम्यक्त्व प्राप्ति दर्शन चित्र, ७. उपशम सम्यक्त्व प्राप्ति दर्शन चित्र, ८. मोहनीय कर्म भेद दर्शन चित्र, ९. आयुष्य स्थिति दर्शन यंत्र, १०. आनुपूर्वी दर्शन चित्र, ११. कर्म वृक्ष आदि। इन चित्रों से विषय की स्पष्टता बढ़ जाती है और पाठक के लिए गूढ़ विषय भी सरल हो जाते हैं। साध्वीजी की यह रचना महत्त्वपूर्ण एवं सराहनीय है। चित्रों के कारण इसकी विशेषता और बढ़ गयी है। पुस्तक की छपाई साफ है, बाह्य रूपरेखा आकर्षक है। आशा है, पाठक उसे पसन्द करेंगे। इसके कार्य के लिए लेखिका तथा प्रकाशक बधाई के पात्र हैं।

— डॉ० बशिष्ठनारायण सिन्हा

**Book : Restoration of the Original Language of Ardhamāgadhī Texts, Author : K. R. Chandra ( Formerly H. O. D. of Prakrit and Pali School of Language, Gujrat University, Ahmedabad ), Publisher : Prakrit Jaina Vidya Vikas Fund, Ahmedabad, Year of Publication : 1994, 375, Saraswati Nagar, Azad Society Ahmedabad - 380 015, No. of pages : 104, Price : Rs. 80.00.**

Dr. K. R. Chandra is a renowned scholar and a true researcher in the field of Textual Criticism of Prakrit language. I had the privilege of writing a review on his earlier book entitled 'परम्परागत प्राचीन व्याकरण की समीक्षा और अर्धमागधी' which has been published in last issue of Śramaṇa.

Dr. Chandra's erudition and critical insight make him a keen observer of the linguistic peculiarities of Jaina canons. His main effort in this book is to find out and ascertain the original form of the Ardhamāgadhī, the language of the sacred Jaina canons, as there are many variants found in different editions, recensions and manuscripts.

At the outset it appears to me a futile exercise on the part of the author so far as the sanctity of Jaina canons is concerned because unlike Vedic texts the Jaina canons do not attach much importance to the word. They are only concerned with the true meaning as is often said.

अत्थं भासइ अरहा सुत्तं गंथंति गणहरा निउणं।

How does it matter whether it is अत्ता or अप्पा or आया or आता for आत्मा . What matters is that the reader should know the sense of आत्मा. The variants do not change the meaning and consequently the sanctity of the sacred text remains as it is whereas in the field of Vedas the word has the supreme role to play, because the Veda is word dominated ( शब्द प्रधान ) sacred text. Not only the word even the accent is equally important. Even the slight shifting of the accent inadvertently will change the meaning of the word. This is the reason that even today the Vedic text is found intact even after a long long period of five thousand years.

The position of the sacred Jaina texts is different. Had it been like that of the Vedas there would not have been the problem of variants faced by the learned author today.

But inspite of what has been said above the effort on the part of the author is wonderful and as such highly commendable. In order to satisfy the curiosity and a long standing need of the lovers of Jaina literature and maintain the editorial discipline, the direction shown by Dr. Chandra is an eye opener. The curiosity of all of us is there to reach as near as possible to the sayings of the Lord *Tīrthan̄kara* if not the exact words which he uttered with his lotus like mouth.

This wonderful book under review comprises two sections. Section I contains the case study of the variants of a few Ardhamāgadhī words from the *Ācārāṅga* Pt. I. The author has restricted his study to the following words :

यथा, तथा , प्रवेदितम् एकदा, एकः, एके, एकेषाम्, औपपादिक, औपपातिक, लोव, लोके and क्षेत्रज्ञः।

Each word has been shown in the tables with its numerous variants as found in different printed editions of palm-leaf manuscripts and paper manuscripts. Seven tables have been displayed in this sections. Section II contains the study of the variants from *Ācārāṅga*, *Sūtrakṛtāṅga*, *Riṣibhāṣitāni*, *Uttarādhyayana*, *Daśavaikālika Sūtra*, *Cūrṇis* and Samskṛta commentaries.

It is a critical and comparative study of the variants based on the sound principles of linguistics. The variants as given above have been selected from the text of the *Ācārāṅga* Pt. I ( M. J. U. edition, 1977 ) and compared with that of textual readings available in the various manuscripts ( palm-leaf & paper manuscripts ). After analysing the old Ardhamāgadhī forms of Samskrita यथा and तथा the author concludes his findings as follows :

The study of variants of these two words reveals that with the passage of time and the evolutionary trend of the Prākṛt younger and new forms like *Jahā* and *Tahā* became popular and they replaced

the olds forms like अधा and तथा. The same is the case with other forms also.

That there is definitely a linguistic system working all through in the development of Ardhamāgadhī is strikingly revealed in the table No. 1 where the learned author has painstakingly shown numerous variants of यथा and तथा. The word यथा has variants जहा, जधा, अहा and अधा but the word तथा has तहा, तधा, तहं, तधं but never अहा or अधा or अहं.

By showing the direction towards the real Ardhamāgadhī form in the sacred Jaina canon and there by satisfying our curiosity of knowing and going near to the sacred and unpolluted language of the Lord *Tirthankara*, Prof. Chandra has done great service to the lovers of Prākṛta in general and the devotees of sacred Jaina texts in particular. To solve the problem he has posed is an uphill task and requires a team of scholars like him because one single scholar will not be able to complete the whole work.

May God bless the author ( Prof. Chandra ) with hundred years life and make-him instrumental in leading a team of scholars to bring out the most authentic editions of *Ācārāṅga* and *Sūtra-kṛtāṅga* etc.

— Prof. S. C. Pande

**पुस्तक : भक्तामर संदोह, लेखक : डॉ० हरिशंकर पाण्डेय, प्रकाशक :**  
पन्नालाल बांठिया, प्रज्ञा प्रकाशन, बांठिया बिल्डिंग, २०५४ हल्दियों का रास्ता, जौहरी बाजार, जयपुर ( राज० )-३, प्रथम संस्करण : जनवरी-९६, मूल्य : रु० ७५.००,  
आकार : डिमाई, पृष्ठ : ९६।

सामान्यतया अपने आराध्य को प्रसन्न करने के लिए अथवा अपनी मनोकामनाओं को पूर्ण करने के लिए मानव अनेक प्रकार के उपाय करता है, उन्हीं उपायों में से एक प्रसिद्ध उपाय स्तोत्र साहित्य भी है। स्तुति भी एक विलक्षण वस्तु है, वह चाहे किसी भी भाषा, किसी भी रूप में हो। उसी स्तुति के एक रूप — जो कि संस्कृत भाषा का आश्रय लेकर की गयी है — के विषय में प्रकाश डाला जा रहा है।

अनादि काल से संस्कृत भाषा का आश्रय लेकर वैदिक, पौराणिक अथवा जैन स्तोत्र-साहित्य का विविध रूपों में सृजन होता आया है। वेदों में — अग्नि, इन्द्र, उषा, वरुण, वाक्, विष्णु आदि देवताओं की स्तुति वैदिक ढंग से, तो पुराणों में — कृष्ण,



गणेश, गौरी, भवानी, राम, शिव और हरि की पौराणिक ढंग से तथा जैनों में — उनकी मान्यतानुसार संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश और हिन्दी भाषाओं में विविध प्रकार से भगवान् जिनेन्द्र की स्तुति की गयी है।

परमभक्त आचार्य मानतुंग द्वारा रचित **भक्तामर स्तोत्र** एक ऐसी उत्कृष्ट रचना है जिसका समादर दिगम्बर एवं श्वेताम्बर परम्परा में तो समान रूप से है ही; इसके साथ ही साथ जैनेतर भक्त समाज भी मानतुंगाचार्य की इस रचना के आगे विनत है। इस स्तोत्र की महत्ता इतनी अधिक है कि इसमें मात्र ४८ ही पद्य हैं परन्तु वे ४८ पद्य, पद्य न कहाकर काव्य कहे जाते हैं।

उक्त ( भक्तामर ) स्तोत्र पर उनेक अनुवाद, टीकाएँ व्याखाएँ प्रकाशित हो चुकीं हैं, किन्तु प्रस्तुत ( भक्तामर-संदोह ) कृति की भाँति तुलनात्मक अध्ययन इससे पूर्व प्रकाशित नहीं हुआ था। इस स्तोत्र की तुलना गजेन्द्र मोक्ष के साथ करके विद्वान लेखक ने एक सराहनीय कार्य किया है। इसमें आलंकारिक दृष्टि से लेखक ने जो मीमांसा की है वह पाठकों के लिए एक आकर्षण का विषय बनेगी।

पुस्तक की साज-सज्जा आकर्षक एवं मुद्रणकार्य निर्दोष है। उक्त सभी बातों को ध्यान में रखकर यह कहा जा सकता है कि पुस्तक संग्रहणीय है।

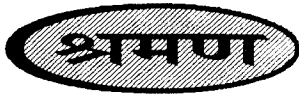
— डॉ० जयकृष्ण त्रिपाठी

**पुस्तक : बहुरत्ना वसुन्धरा, लेखक :** अंचलगच्छीय ५० गणिवर्य श्री महोदय सागर जी म० सा०, प्रकाशक : श्री कस्तूर प्रकाशन ट्रस्ट, १०२ लक्ष्मी अपार्टमेन्ट २०६, डॉ० एनी बेसन्ट रोड, वरली नाका, मुंबई - १८, पृष्ठ : ७२, मूल्य : १५ रुपये, आकार : डिमाई, संस्करण : प्रथम।

अंचलगच्छाधिपति ५० पू० आचार्य भगवंत श्री गुणसागरसूरीश्वर जी म० सा० के शिष्य आगमाभ्यासी पू० गणिवर्य श्री महोदयसागर जी म० सा० द्वारा संपादित 'बहुरत्ना वसुन्धरा' नामक पुस्तक में ऐसे जैनेतर अनुपम रत्नों के अनुमोदनीय प्रेरक दृष्टान्तों का संग्रह है जो जन्म से अजैन हैं किन्तु अपने आचरणों से विशिष्ट जैन की कोटि में आते हैं।

वि० सं० २०४८-२०४९ में जब महाराज श्री गुजरात प्रान्त में विहार कर रहे थे उस दौरान उनके सम्पर्क में अनेक ऐसे जैनेतर व्यक्ति ( जो विभिन्न जातियों के थे ) आए, जो कि जन्म से अजैन थे किन्तु आचरण में जैनों से सवाए थे। उन व्यक्तियों के जीवन प्रसंग एवं उनसे हुए ऐसे बहत्तर संवादों को इसमें संकलित किया गया है। 'महाजनो येन गतः स पन्थाः' का अनुसरण अन्य मानवों को भी करना चाहिए, इस विचार से उन संवादों को संकलित करके उसे पुस्तक का स्वरूप प्रदान कर मानवोपयोगी बनाया गया है। पुस्तक पठनीय एवं संग्रहणीय है। पुस्तक की साज-सज्जा आकर्षक है एवं मुद्रण कार्य निर्दोष है।

— डॉ० जयकृष्ण त्रिपाठी



## जैन-जगत्

जैनाचार्य जयंतसेनसूरिजी फाउण्डेशन ट्रस्ट द्वारा राष्ट्रपति 'अनेकान्तरत्न'  
की उपाधि से अलंकृत

'अनेकान्तवाद' दर्शन के अनुसरण से विश्व की समस्याओं  
का समाधान : राष्ट्रपति

“मैं बचपन से जैन धर्म के अनेकान्तवाद एवं अहिंसा की धारा से आकर्षित रहा हूँ। जीवन प्रत्येक उदार दृष्टिकोण से एवं सत्य अनेक दृष्टिकोणों से देखा जा सकता है, ऐसा मैंने बचपन से जाना है।” यह उद्बोधन राष्ट्रपति शंकरदयाल शर्मा ने आचार्य श्री जयन्तसेनसूरिजी फाउण्डेशन ट्रस्ट से 'अनेकान्तरत्न' की उपाधि स्वीकार करते वक्त कहा।

मुम्बई के बिरला मातुश्री सभागृह में 'अनेकान्तरत्न' की उपाधि स्वीकार करते हुए राष्ट्रपति ने कहा कि विश्व के प्रत्येक धर्म ने सत्य की व्याख्या अपने-अपने ढंग से की है। व्याख्या भले ही अलग-अलग हो परन्तु सांस्कृतिक मूल्यों के सन्दर्भ में देखें तो सबका अर्थ एक ही होता है। इस अवसर पर महाराष्ट्र के राज्यपाल डॉ० पी० सी० अलेक्जेंडर ने कहा कि अहिंसा और मानवता प्रत्येक धर्म में है, परन्तु जैन धर्म में अहिंसा दूसरे धर्मों की अपेक्षा अधिक व्यापक है। भगवान् महावीर ने जीवमात्र के प्रति अहिंसा की भावना का उपदेश दिया था।

इस अवसर पर आचार्यश्री जयंतसेनसूरिजी ने कहा कि आचार में अहिंसा और विचार में अनेकान्तवाद रखना जैन धर्म का सिद्धान्त है। जहाँ आग्रह है वहाँ दुराग्रह, विग्रह और कदाग्रह है, परन्तु जहाँ अनेकान्तवाद है वहाँ आग्रह का स्थान नहीं। यही जैन धर्म का उपदेश आज समस्त विश्व को है।

महाराष्ट्र के प्रधान प्रमोद नवलकर ने कहा कि जैन अनुयायी संख्या में कम हैं परन्तु जीवन-जीने की शैली में विश्व में व भारत में इनका प्रमुख स्थान है। संघवी गगलदास हालचंद भाई ने राष्ट्रपति को 'अनेकान्तरत्न' की उपाधि की तस्वीर अर्पित की। श्री सेवंतीलाल मोरखीया द्वारा १ लाख ११ हजार १ सौ ११ रुपये का चेक दिया गया। राष्ट्रपति ने यह रकम शास्त्रीय चिकित्सा महाविद्यालय, भोपाल के विकासार्थ दान में दे दी।

इस अवसर पर जैन समुदाय के अग्रणी श्री दीपचन्द गाडी, चैतन्य काश्यप मफतकाका, मंगल प्रभात लोढ़ा, सुरेन्द्रभाई पारेख, वाडीलाल गगलदास, चन्द्रकांत भुदर-मल, चंदूलाल छोटेलाल आदि उपस्थित थे।

## अनेकान्त ज्ञानमंदिर बीना में पाण्डुलिपियों का अपूर्व संग्रहालय

पाण्डुलिपियाँ हमारी संस्कृति की अमूल्य धरोहर हैं। पाण्डुलिपियों को सुरक्षित रखने के उद्देश्य से परमपूज्य मुनि श्री १०८ सरलसागर जी महाराज के सुयोग्य शिष्य ब्रह्म० संदीप जैन 'सरल' की पावन प्रेरणा एवं मार्गदर्शन में छोटी-बजरिया, बीना (सागर) में अनेकान्त ज्ञान मन्दिर के अन्तर्गत पाण्डुलिपियों का एक विशाल संग्रहालय स्थापित किया जा चुका है। जिसमें अनेक स्थानों से सैकड़ों पाण्डुलिपियाँ (हस्तलिखित ग्रन्थ) आ चुके हैं। पाण्डुलिपियों का सूचीकरण करके उन्हें स्टील की अल्मारियों में नवीन बेस्टन में लपेटकर सुरक्षित रखा जा रहा है। जिन मन्दिरों में या शास्त्रभण्डारों में हस्तलिखित ग्रन्थ हैं वे संग्रहालय में स्वयं भिजवाएँ अथवा सूचित करें ताकि कार्यकर्तागण स्वयं उस स्थान से ग्रन्थ प्राप्त कर सकें। जिस स्थान से ग्रन्थ प्राप्त होंगे वे रिकार्ड रजिस्टर में दर्ज रहेगें और भविष्य में जरूरत पड़ने पर वापस भी ले जा सकते हैं। अप्रकाशित पाण्डुलिपियों को प्रकाशित किया जायेगा।

सम्पर्क के लिए लिखें :

**पदमचन्द्र जैन**

अनेकान्त जैन मंदिर, छोटी बजरिया, बीना

जिला : सागर ( म० प्र० )

## मूल्यपरक शिक्षा पर कार्यशाला सम्पन्न

गाँधी विद्या संस्थान, वाराणसी द्वारा विगत फरवरी के तृतीय सप्ताह में 'मूल्यपरक शिक्षा' पर एक त्रिदिवसीय कार्यशाला का आयोजन किया गया। कार्यशाला के अन्तिम दिन दि० २४ फरवरी को आयोजित कार्यक्रम की अध्यक्षता पार्श्वनाथ विद्यापीठ के निदेशक प्रो० सागरमल जैन ने की। विद्यापीठ के 'अहिंसा एवं मूल्य शिक्षा विभाग' के अध्यक्ष प्रो० सुरेन्द्र वर्मा इस समारोह में मुख्य अतिथि के रूप में आमंत्रित किये गये, जहाँ उन्होंने मूल्यपरक शिक्षा पर व्याख्यान दिया।

गाँधी विद्या संस्थान के निदेशक एवं गाँधी-दर्शन के प्रख्यात विद्वान प्रो० रामजी सिंह ने कार्यशाला में आमंत्रित विद्वानों का आभार व्यक्त करते हुए 'मूल्यपरक शिक्षा' के हार्द को अपनी चिरपरिचित शैली में प्रस्तुत कर श्रोताओं को मन्त्रमुग्ध कर दिया।

## अखिल भारतीय शास्त्र संगोष्ठी सम्पन्न

संस्कृत विद्या धर्मविज्ञान संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के तत्त्वावधान में ११-१३ मार्च, १९९६ को 'जैनबौद्धमतानुसारेण जीवनमूल्यानि' विषय पर चर्चा हेतु अखिल भारतीय शास्त्र संगोष्ठी का आयोजन किया गया। १२ मार्च को तृतीय सत्र में जैन विद्या के शीर्षस्थ विद्वान् और पार्श्वनाथ विद्यापीठ के निदेशक प्रो० सागरमल जैन को मुख्य वक्ता के रूप में आमंत्रित किया गया, जहाँ उन्होंने **जैन धर्म में जीवन मूल्य** नामक विषय पर अत्यन्त विद्वत्पूर्ण व्याख्यान दिया। इस सत्र की अध्यक्षता पार्श्वनाथ विद्यापीठ के

उपनिदेशक एवं अहिंसा एवं मूल्य शिक्षा विभाग के अध्यक्ष प्रो० सुरेन्द्र वर्मा ने की। अपने अध्यक्षीय उद्बोधन में उन्होंने **जैन धर्म में मूल्यों की विवेचना** नामक विषय पर सारगर्भित व्याख्यान प्रस्तुत किया। संगोष्ठी में विद्यापीठ के प्रवक्ता डॉ० श्रीप्रकाश पाण्डेय विशेष रूप से उपस्थित रहे।

### आचार्य प्रेमसूरीश्वर जी महाराज पार्श्वनाथ विद्यापीठ में

११ मार्च : तपागच्छीय आचार्य प्रेमसूरीश्वर जी महाराज ठाणा ८ का विद्याश्रम में शुभागमन हुआ। यहाँ आपने विद्यापीठ की सम्पूर्ण शैक्षणिक गतिविधियों एवं क्रिया-कलापों की विस्तृत जानकारी प्राप्त की। आपने यहाँ की स्थायी चित्रकला प्रदर्शनी एवं विशाल ग्रन्थागार और उसमें संगृहीत अनेक दुर्लभ सचित्र पाण्डुलिपियों आदि का अवलोकन करते हुए हार्दिक प्रसन्नता व्यक्त की। विद्यापीठ के निदेशक प्रो० सागरमल जैन ने संस्थान के विद्वानों — प्रो० सुरेन्द्र वर्मा, प्रो० सुरेश चन्द्र पाण्डेय, उपाचार्य डॉ० वशिष्ठ नारायण सिन्हा, वरिष्ठ प्रवक्ता डॉ० अशोक कुमार सिंह, डॉ० श्रीप्रकाश पाण्डेय, डॉ० शिवप्रसाद, डॉ० रज्जन कुमार आदि का आचार्यश्री से परिचय कराया और जैन विद्या के अध्ययन, संशोधन, अध्यापन आदि के क्षेत्रों में इन सभी के अमूल्य योगदान की चर्चा की। आचार्यश्री और उनके सुशिष्यों ने उक्त विद्वानों से विभिन्न गूढ़ विषयों पर विचारों का आदान-प्रदान किया।

### जैन विद्या संगोष्ठी सम्पन्न

इन्दौर १२-१३ मार्च, १९९६ : परमपूज्य आर्यिका शिरोमणि ज्ञानमती माता जी के पावन सान्निध्य में कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर द्वारा दि० १२ मार्च १९९६ को जैन विद्या संगोष्ठी का आयोजन किया गया, जिसमें 'आचार्य कुन्दकुन्द और उनका काल', 'जैन धर्म एवं विज्ञान', 'जैनधर्म एवं पर्यावरण', 'जैनागम एवं वास्तुशास्त्र' आदि अति महत्त्वपूर्ण विषयों पर लब्धप्रतिष्ठित विद्वानों द्वारा शोधपत्रों का वाचन किया गया। दि० १३/३/९६ को प्रो० भागचन्द्र जैन 'भास्कर' को उनकी अप्रकाशित कृति 'जैन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व' पर २५ हजार रुपये का कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ पुरस्कार प्रदान किया गया। प्रो० जैन ने इस राशि में ७५ हजार रुपये अपनी ओर से मिलाकर एक 'पारमार्थिक ट्रस्ट' के स्थापना की घोषणा की। इसी प्रकार उदयचन्द्र जैन, सुरेन्द्र कुमार आर्य एवं कुन्दनलाल जैन को अर्हत् वचन १९९४ के क्रमशः प्रथम, द्वितीय और तृतीय पुरस्कार प्रदान किये गए। इसी अवसर पर डॉ० अनुपम जैन को 'वाणीभूषण' की उपाधि से सम्मानित भी किया गया।

### पार्श्वनाथ विद्यापीठ में 'तान्त्रिक एवं आगमिक साहित्य के आयाम'

#### विषय पर संगोष्ठी सम्पन्न

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के दर्शन विभाग, धर्म-आगम विभाग एवं पार्श्वनाथ विद्यापीठ के संयुक्त तत्त्वावधान में **तान्त्रिक एवं आगमिक दर्शन के आयाम** विषय पर



पार्श्वनाथ विद्यापीठ में तांत्रिक एवं आगमिक साहित्य के आयाम विषय पर संगोष्ठी

आयोजित चार दिवसीय अखिल भारतीय संगोष्ठी के तीसरे दिन दि० १६/३/९६ के दो सत्र पार्श्वनाथ विद्यापीठ में आयोजित किये गये। संगोष्ठी का विषय था — 'जैन एवं बौद्ध धर्म में तन्त्र। संगोष्ठी के प्रथम सत्र की अध्यक्षता प्रकाण्ड विद्वान् प्रो० देवराज ने की। इस सत्र का संचालन विद्यापीठ के उपनिदेशक प्रो० सुरेन्द्र वर्मा ने किया। इस सत्र में प्रो० सागरमल जैन के अतिरिक्त विद्यापीठ के वरिष्ठ प्रवक्ता डॉ० अशोक कुमार सिंह; डॉ० नन्दलाल जैन, रीवा; अजितप्रसाद जैन, ग्वालियर; मनोरमा जैन, ग्वालियर; श्री एस० एम० जैन ( अभियन्ता ); डॉ० कमलेश कुमार जैन; डॉ० फूलचन्द जैन 'प्रेमी'; डॉ० रज्जनकुमार; ब्रह्मचारी श्री वासुपूज्य जी आदि विद्वानों के शोधपत्रों का वाचन हुआ। लालभाई दलपतभाई संग्रहालय, अहमदाबाद के असिस्टेंट क्यूरेटर श्री ललित कुमार जी द्वारा फैक्स से भेजे गये शोधपत्र को अत्यन्त प्रभावशाली रूप में विद्यापीठ के प्रवक्ता डॉ० श्रीप्रकाश पाण्डेय ने प्रस्तुत किया। इस अवसर पर तंत्रविद्या के अनेक शीर्षस्थ विद्वान् उपस्थित थे। आगन्तुक विद्वानों ने विद्यापीठ की स्थायी चित्रकला प्रदर्शनी, बृहद् पुस्तकालय, उसमें संग्रहीत अनेक दुर्लभ पाण्डुलिपियों, प्रकाशित ग्रन्थों, परिसर स्थित विभिन्न भवनों आदि का अवलोकन करते हुए यहाँ की शैक्षणिक गतिविधियों और इन सभी के सूत्रधार प्रो० सागरमल जैन और उनके युवा सहकर्मियों की भूरि-भूरि प्रशंसा की। विद्यापीठ के प्राकृत भाषा विभाग के अध्यक्ष प्रो० सुरेशचन्द्र पाण्डे ने इस अवसर पर आगन्तुक विद्वानों के सम्मान में प्राकृत भाषा में स्वागत भाषण दिया। प्रो० कमलेशदत्त त्रिपाठी ने इस संगोष्ठी में पढ़े गये शोध-पत्रों की समीक्षा करते हुए निष्कर्ष प्रस्तुत किया। इस सत्र में पठित लेखों का विवरण इस प्रकार है —

मंगलाचरण — (क) उवसग्गहर स्तोत्रपाठ, (ख) बृहद्शान्ति स्तोत्रपाठ,

(ग) आत्मरक्षा स्तोत्रपाठ — साध्वी श्री प्रियदर्शना श्रीजी म० सा०; विषय प्रवर्तन — प्रो० सागरमल जैन; १. जैन धर्म दर्शन और तंत्र — प्रो० सागरमल जैन; २. जैन तांत्रिक साधना में सरस्वती — डॉ० अशोक कुमार सिंह; ३. तंत्र और मंत्र के अन्तःसम्बन्ध पर विचार — मनोरमा जैन; ४. जैन तंत्र का विकास एवं भैरव पद्यावतीकल्प का तांत्रिक विवेचन — अजित कुमार जैन; ५. जैन यन्त्र-मंत्र-तंत्रवाद — डॉ० नन्दलाल जैन; ६. **Jaina Tantrika Yantra** — Dr. Lalit Kumar, read by Dr. S. P. Pandey; ७. योगिनी पूजा एवं जैन धर्म — श्री एस० एम० जैन; ८. जैन शास्त्रों में तंत्र-मंत्र के उल्लेख — डॉ० कमलेश कुमार जैन; ९. तंत्र और जैन साधना — डॉ० रज्जन कुमार।

द्वितीय सत्र की अध्यक्षता बौद्ध धर्म-दर्शन के सुप्रसिद्ध विद्वान एवं तिब्बती उच्चशिक्षा संस्थान ( मान्य विश्वविद्यालय ) के कुलपति प्रो० रिपोछे ने की। इस सत्र में प्रो० मणिशंकर शुक्ल, प्रो० रमाशंकर त्रिपाठी, प्रो० साम्तानी, प्रो० कमलाकर मिश्र आदि के बौद्ध तंत्र साहित्य से सम्बद्ध शोधपत्रों का वाचन हुआ। अत्यन्त सफलतापूर्वक सम्पन्न इस महत्त्वपूर्ण संगोष्ठी की सम्पूर्ण सुव्यवस्था के लिए विद्यापीठ के वरिष्ठ शिक्षकगण एवं उनके सहयोगी बधाई के पात्र हैं।

### श्री दीपचन्द्र गार्डी 'भारत जैन रत्न १९९६' पुरस्कार से सम्मानित

१६ मार्च १९९६, भारतीय जैन संघटना की बीड शाखा की ओर से महान समाजसेवी श्री दीपचन्द्र गार्डी को बीड में आयोजित सामूहिक विवाह के एक समारोह में 'भारत जैन रत्न १९९६' पुरस्कार से सम्मानित किया गया। श्री गार्डी को यह पुरस्कार पद्मभूषण श्री अण्णा साहेब हजारे, उपमुख्यमंत्री श्री गोपीनाथ राव जी मुंडे, सांसद श्री सुनील दत्त, स्वास्थ्य मंत्री श्री सुरेश नवले आदि महानुभावों के कर-कमलों द्वारा प्रदान किया गया। समारोह की अध्यक्षता पद्मभूषण डॉ० गोविन्दभाई श्रॉफ एवं संयोजन श्री नितिन कोटेचा, सचिव भारतीय जैन संघटना, महाराष्ट्र ने किया।

उल्लेखनीय है कि उदारमना श्री गार्डी बहुआयामी-व्यक्तित्व के धनी, एवं कर्मठ समाजसेवी हैं। आप पार्श्वनाथ विद्यापीठ से भी अभिन्न रूप से जुड़े हैं। विद्यापीठ श्री गार्डी के इस सम्मान पर उन्हें हार्दिक बधाई देता है।

### श्री दीपचन्द्र गार्डी का संक्षिप्त-परिचय

नाम : श्री दीपचन्द्र गार्डी

पता : ३, उषाकिरण, एम० एल० धानूकर मार्ग, मुम्बई — ४०० ०२६

शिक्षा : बी० एस-सी०, एल-एल० बी०, बार ऐट लॉ १९४२-४३

धर्म : हिन्दू जैन

व्यवसाय : रिटायर्ड बैरिस्टर, सामाजिक एवं धार्मिक कार्यों में सन्नद्ध

## १. श्री दीपचन्द्र गार्डी निम्नलिखित संस्थाओं के अध्यक्ष हैं

१. अखिल भारतीय जैन श्वेताम्बर कॉन्फ्रेंस, २. ऋतम्भरा विश्वविद्यापीठ, मुम्बई, ३. भारतीय सरस्वती संसद मंदिर, मंग्रोल, ४. गुजरात महाजन पांजरापोल एवं गौशाला संघ, ५. सोसाइटी फॉर रिलीफ एण्ड रिहेबिलिटेशन ऑव डिसेबुल्ड, ६. एनार्डे रूरल सपोर्ट फाउण्डेशन, मुम्बई।

## २. निम्नलिखित संस्थाओं के सदस्य कार्यपरिषद् एवं ट्रस्टी

१. भारत जैन महामंडल ( भूतपूर्व अध्यक्ष, मुम्बई ), २. महावीर जैन विद्यालय, मुम्बई, ३. महावीर हार्ट रिसर्च फाउण्डेशन, मुम्बई, ४. आत्मानन्द जैन सभा, मुम्बई, ५. फादर ऐंजिल टेक्रिकल इन्स्टीट्यूट, मुम्बई, ६. भगवान् महावीर कल्याण केन्द्र, मुम्बई, ७. भावनगर स्त्री केलवणी मण्डल, भावनगर, ८. धरशाला ( वडवा, गुजरात ), ९. जैन शासन सेवा ट्रस्ट, अहमदाबाद, १०. इन्टरनेशनल जैन कांग्रेस ( दिल्ली ), ११. अहिंसा इन्टरनेशनल, दिल्ली, १२. अखिल हिन्द कृषि गरु सेवा संघ, १३. आत्मवल्लभ जैन स्मारक शिक्षा निधि, दिल्ली, १४. भगवान् महावीर मेमोरियल समिति, दिल्ली।

## ३. निम्न ट्रस्टों के माध्यम से विभिन्न मानवता गतिविधियों का संचालन

१. श्री दीपचन्द्र गार्डी चैरिटेबुल ट्रस्ट, २. श्री दीपचन्द्र गार्डी, सोशयल ऐण्ड रिलीजियस चैरिटेबुल ट्रस्ट, ३. संस्कृति दीप फाउण्डेशन, मुम्बई।

## ४. इसके अतिरिक्त ट्रस्ट के अन्य महत्त्वपूर्ण कार्य

१. अनेक प्राइमरी, सेकेण्डरी, हायर सेकेण्डरी एवं उत्तर बुनियादी विद्यालयों का गुजरात, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र एवं राजस्थान में निर्माण, २. गुजरात में अनेक सामुदायिक स्वास्थ्य केन्द्रों एवं ३० से ४० बिस्तर वाले अस्पतालों का निर्माण, ३. दलित वर्ग के लिए अनेक छात्रालयों का निर्माण, ४. अनेक पालीटेक्रिक एवं आई. टी. आई. विद्यालयों का निर्माण, ५. रसायन विभाग गुजरात युनिवर्सिटी की सहायता से मिट्टी की उर्वरक क्षमता बढ़ाने की परियोजना में सक्रिय सहभागिता, ६. १९८५-८६, १९८६-८७ एवं १९८७-८८ के सूखे के दौरान सौराष्ट्र एवं कच्छ में विभिन्न मवेशी कैम्पों में एक लाख से अधिक मवेशियों का रखरखाव, ७. स्त्री केलवणी मन्दिर, भावनगर के लिए अनेक कॉलेजों एवं स्कूलों का निर्माण, ८. कामगार महिला एवं नर्सिंग कॉलेज, इन्दौर, ९. साहित्यिक एवं सांस्कृतिक अभियानों में पूर्ण सहायक।

## ५. अनेक मेडिकल संस्थाओं को उनके खर्च के लिए वित्तीय सहायता मुहैया कराना

१. हरिकिशन दास हॉस्पिटल, मुम्बई, २. विजयवल्लभ हॉस्पिटल, बड़ौदा, ३. के० जे० मेहता टी० बी० हॉस्पिटल, अमरगढ़, गुजरात, ४. सी० यू० शाह टी० बी० एवं आई हॉस्पिटल, गुजरात, ५. श्री जीवन ज्योति आरोग्य संघ ( उना ), गुजरात, ६. यूसुफ मेहराली सेन्टर, महाराष्ट्र, ७. मुक्तिरंजन हॉस्पिटल, दाहोद, गुजरात ( आदिवासी श्रेत्र ), ८. जनक स्मारक हॉस्पिटल, व्यारा, गुजरात ( आदिवासी क्षेत्र ), ९. महावीर जनरल

हॉस्पिटल, सूरत, १०. श्रीमती मोतीबेन भीखाचन्द जनता हॉस्पिटल, पाटन, ११. क्लॉथ मार्केट हॉस्पिटल, इन्दौर, १२. अनेक पशु चिकित्सालय, १३. अनेकों नेत्र चिकित्सा कैम्प, टी० बी०, ऑर्थोपेडिक एवं जनरल मेडिकल कैम्पों का प्रतिवर्ष देश के विभिन्न भागों में सफल आयोजन।

सेवा का कोई ऐसा क्षेत्र नहीं बचा है जो श्री गार्डी साहब से अछूता हो।

आपके एक पुत्र डॉ० रश्मिकान्त ( स्त्रीरोग विशेषज्ञ ) अमेरिका में प्रैक्टिस कर रहे हैं। दूसरे लड़के हंसमुख जी यू० के० में सॉलिसिटर हैं।

श्री गार्डी साहब की सोच है कि प्रत्येक जीवित प्राणी चाहे वे छोटे हों या बड़े उन्हें शान्तिपूर्वक जीने का अधिकार है। जो मेरा है वह सत्य हो सकता है लेकिन जो सत्य है वह मेरा होना चाहिए।

### भारतीय ज्ञानपीठ की ओर से शौरसेनी प्राकृत पुरस्कार

शौरसेनी प्राकृत भारतवर्ष की प्राचीनतम साहित्य की एवं जनसम्पर्क की भाषा रही है। इसीलिए जैनाचार्यों ने इस भाषा के माध्यम से अपने गवेषणापूर्ण विचारों और लोकहितकारी सन्देशों को चिरकाल से प्राणिमात्र के लिए प्रेषित किया है। परमपूज्य आचार्य श्री विद्यानन्द जी महाराज की प्रेरणा से उक्त शौरसेनी प्राकृत भाषा के विषय में व्यापक शोधकार्यों को प्रोत्साहित करने के लिए 'भारतीय ज्ञानपीठ ट्रस्ट' द्वारा कुन्दकुन्द भारती शोध-संस्थान के तत्त्वावधान में प्रति वर्ष ग्यारह हजार रुपये की राशि का एक वार्षिक पुरस्कार इस विद्या के क्षेत्र में कार्य करने वाले विद्वान को दिया जायेगा। इस सम्बन्ध में विशेष परिचय, नियमावली एवं आवेदन पत्र आदि प्राप्त करने के लिए निदेशक, कुन्दकुन्द भारती शोध संस्थान, १८-बी, स्पेशल इन्स्टीट्यूशनल एरिया, नई दिल्ली - ११० ०६७ से सम्पर्क किया जा सकता है।

### लाला श्री खैरायती लाल जी जैन दिवंगत

बीसवीं शताब्दी के एक दानवीर, धर्मपरायण, कर्मनिष्ठ एवं सेवाभावी श्रावक दिल्ली निवासी लाला खैरायती लाल जी जैन का दि० २०-३-९६ को ९५ वर्ष की आयु में निधन हो गया। आप भगवान् महावीर के सच्चे पुजारी तथा पंजाब केशरी जैनाचार्य स्व० श्री विजयवल्लभसूरि जी महाराज के परम अनुयायी थे।

लाला खैरायती लाल जी का जन्म सन् १९०२ में धर्ममूर्ति लाला नरपतराय एवं राधा देवी के परिवार में हुआ था जो जेहलम ( पाकिस्तान ) के रहने वाले थे। स्कूली शिक्षा ग्रहण कर १२-१३ वर्ष की आयु में ही अपने पिता के साथ सन् १८७६ से चल रहे व्यापार में शामिल हो गए थे। अठारह वर्ष की आयु में ही आप परिणय सूत्र में बँध गये। लाला जी एक कुशल व्यापारी थे। देश-विभाजन के समय परिवार सहित दिल्ली में आ बसे और १९४९ में रबड़ उद्योग में पदार्पण किया।

आपने अपने जीवनकाल में अनेक मंदिरों के भूमिपूजन, शिलान्यास एवं प्रतिष्ठ



का लाभ लिया और विद्यालयों तथा धर्मशालाओं के निर्माण में विपुल योगदान दिया। दिल्ली के रूपनगर का जैन मंदिर आपकी ही प्रेरणा से बना था। पालीताणा की पंजाबी धर्मशाला के शिलान्यास में आप भागीदार थे। सुन्दरनगर, लुधियाना में निर्मित जैन मंदिर तथा श्री बद्रीनाथ, ऋषिकेश, हरिद्वार, शाहदरा एवं फरीदाबाद के मंदिरों के निर्माण में आपने विशेष भूमिका निभाई। हस्तिनापुर के पावन श्री पारणा मंदिर का शिलान्यास तथा प्रतिष्ठा का सम्पूर्ण लाभ आपने लिया था। गुडगाँव के श्री शान्तिनाथ जैन मंदिर, माता पद्मावती मंदिर तथा सेवासदन के भवननिर्माण एवं प्रतिष्ठा में आपका योगदान सर्वोपरि रहा। दिल्ली में निर्मित भव्य एवं कलात्मक श्री विजयवल्लभ स्मारक का शिलान्यास, भगवान् वासुपूज्य जिनालय में मुनिसुव्रत स्वामी की प्रतिमा की प्रतिष्ठा तथा नर्सरी स्कूल के निर्माण के लिए आप चिरस्मरणीय रहेंगे। श्री हस्तिनापुर में भगवान् श्री ऋषभदेव जी की निर्वाण-स्थली अष्टापद का शास्त्रोक्त रीति से आयोजित मंदिर निर्माण के लिए भूमिपूजन अभी डेढ़ मास पूर्व आपके ही कर-कमलों से हुआ था।

२२ मार्च को आयोजित उनकी विशाल श्रद्धाञ्जलि सभा में गुणानुवाद के लिए हजारों श्रद्धालुओं ने भाग लिया। इस अवसर पर पार्श्वनाथ विद्यापीठ की ओर से प्रो० सागरमल जैन भी उपस्थित रहे। उपस्थित जनसमूह ने लालाजी को बीसवीं शताब्दी का सर्वश्रेष्ठ श्रावक कहा और उन्हें 'शासनरत्न' की उपाधि से मरणोपरान्त अलंकृत किया।

### मद्रास में जैन विद्याश्रम का शुभारम्भ

'जैन विद्या अनुसन्धान प्रतिष्ठान' मद्रास के तत्त्वावधान में छात्रों के सर्वांगीण विकास एवं जैन संस्कारों से युक्त उच्चकोटि की शिक्षा प्रदान करने के लिए स्थापित जैन विद्याश्रम नाम बृहद् आवासीय विद्यालय का शुभारम्भ २७ जून, १९९६ से हो रहा है।

### पुरस्कार हेतु कृतियाँ आमन्त्रित

अतिशय क्षेत्र महावीर जी द्वारा संचालित जैन विद्या संस्थान एवं अपभ्रंश साहित्य अकादमी, दिगम्बर अतिशय क्षेत्र श्री महावीर जी की ओर से वर्ष १९९६ के लिए ग्यारह-ग्यारह हजार रुपये के महावीर पुरस्कार एवं स्वयम्भू पुरस्कार के लिए क्रमशः जैन धर्म-दर्शन, इतिहास, साहित्य, संस्कृति आदि से सम्बन्धित किसी भी विषय पर तथा अपभ्रंश साहित्य से सम्बन्धित हिन्दी या अंग्रेजी की रचनाओं की प्रकाशित अथवा अप्रकाशित ४-४ प्रतियाँ ३० सितम्बर १९९६ तक आमन्त्रित हैं। नियमावली तथा प्रारूप दि० जैन नसियां भट्टारक जी, सवाई मानसिंह हाइवे जयपुर-४ से प्राप्त की जा सकती हैं।

वर्ष १९९५ का महावीर पुरस्कार कैलाशनाथ द्विवेदी एवं डॉ० उदयप्रताप सिंह सेंगर को उनकी कृति नाटककार हस्तिमल्ल तथा स्वयंभू पुरस्कार डॉ० त्रिलोकीनाथ प्रेमी को उनकी रचना हिन्दी के आदिकालीन रास और रासक काव्यरूप पर महावीर जयन्ती के अवसर पर ४-४-९६ को प्रदान किया गया।



# NO PLY, NO BOARD, NO WOOD.



## **ONLY NUWUD.<sup>®</sup>**

### **INTERNATIONALLY ACCLAIMED**

*Nuwud MDF is fast replacing ply, board and wood in offices, homes & industry. As ceilings,*

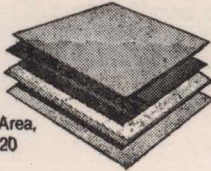
**DESIGN FLEXIBILITY**  
*flooring, furniture, mouldings, panelling, doors, windows... an almost infinite variety of*

**VALUE FOR MONEY**  
*woodwork. So, if you have woodwork in mind, just think NUWUD MDF.*

Arms Communications



E-46/12, Okhla Industrial Area,  
Phase II, New Delhi-110 020  
Phones: 632737, 633234,  
6827185, 6849679  
Tlx: 031-75102 NUWD IN  
Telefax: 91-11-6848748.



*The one wood for  
all your woodwork*



- MARKETING OFFICES:** • AHMEDABAD: 440672, 469242 • BANGALORE: 2219219  
• BHOPAL: 552760 • BOMBAY: 8734433, 4937522, 4952648 • CALCUTTA: 270549  
• CHANDIGARH: 603771, 604463 • DELHI: 632737, 633234, 6827185, 6849679  
• HYDERABAD: 226607 • JAIPUR: 312636 • JALANDHAR: 52610, 221087  
• KATHMANDU: 225504, 224904 • MADRAS: 8257589, 8275121